अप्रैल-मई 2020

₹ 20

समाजवादी बुलेटिन

बाबा साहब और लोहिया
सामाजिक न्याय से समाजवाद
48

कोरोना संकट:
सार्वजनिक क्षेत्र ही
समाज के काम आया
55

खास बातचीत : किरणमय नंदा
40

नाकारा सरकार मजदूर लाचार
12

समाजवाद दरकार
28

R.N.I. No. 68832/97

हमारा लक्ष्य है समाजवाद, लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता। इस लक्ष्य को पाने के लिए एक बड़े सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन की जरूरत है।

मुलायम सिंह यादव

संस्थापक-संरक्षक, समाजवादी पार्टी

समाजवादी बुलेटिन
अप्रैल-मई 2020
वर्ष 21 | संख्या 7

प्रिय पाठकों,

समाजवादी बुलेटिन का यह नया अंक बदले हुए रंग-रूप और कलेवर में आपके हाथों में है। इसमें समाचार के साथ विचार का संतुलन बनाये रखते हुए आपके लिए पठनीय सामग्री को हर पन्ने पर समेटा गया है। हम निरंतर ऐसी ही सामग्री लेकर आयेंगे। आशा है आपको बुलेटिन का यह नया रूप पसंद आयेगा। आपकी प्रतिक्रिया की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक
प्रोफेसर रामगोपाल यादव
☎ 0522 - 2235454
samajwadibulletin19@gmail.com
bulletinsamajwadi@gmail.com
Mob:- 9598909095
/samajwadiparty

समाजवादी पार्टी के लिए
19, विक्रमादित्य मार्ग, लखनऊ से प्रकाशित
आस्था प्रिंटर्स, गोमती नगर, लखनऊ से मुद्रित

R.N.I. No. 68832/97

अंदर

खास बातचीत 40 किरणमय नंदा
"समाजवाद को न मानने वाले संविधान नहीं जानते

12 कवर स्टोरी नाकारा सरकार मजदूर लाचार

विचार 28
समाजवाद जरूरी है

कोरोना संकट: सार्वजनिक क्षेत्र ही समाज के काम आया 55
कोरोना से निपटने में समाजवादी योजनाएं कारगर 46
महामारी के बाद की मारामारी 63

भाजपा राज में श्रमिक अधिकारों पर ताला
सरकारी कर्मचारी भी निशाने पर

बुलेटिन ब्यूरो

वैश्विक महामारी कोरोना के असर से जब बहुत बड़े संकट का साया लगातार गहरा रहा है तब भाजपा की सरकार इसपर काबू पाने के बजाय इस संकट की घड़ी में पूंजीघरानों को संरक्षण देने और गरीब, दलित, पिछड़ों तथा समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के साथ सरकारी कर्मचारियों की जिंदगी में और ज्यादा परेशानियां पैदा करने पर उतारू हो गई है। उसने मजदूरों के शोषण के लिए भी रास्ते खोल दिए हैं। उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार ने एक अध्यादेश के द्वारा मजदूरों को शोषण से बचाने वाले श्रम कानून के अधिकांश प्राविधानों को 3 साल के लिए स्थगित कर दिया है। इतना ही नहीं सरकार ने राज्य कर्मचारियों के वेतन में कटौती के अलावा कई भत्तों को पहले एक साल के लिए और फिर आनन-फानन में स्थायी रूप से खत्म करने का निर्मम फैसला किया है।

ऐसे फैसले अनैतिक, संवेदनहीन, बेहद आपत्तिजनक और अमानवीय हैं। विस्थापन और बेरोजगारी के शिकार श्रमिकों को अब पूरी तरह उनके मालिकों की शर्तों पर काम करने के लिए विवश किये जाने की यह साजिश है। भाजपा को गरीब की नहीं पूंजीपति के हितों को बचाने की चिंता है। सरकार की इन जनविरोधी हरकतों से श्रमिक समाज में गहरा आक्रोश व्याप्त है। समाजवादी पार्टी ने मांग की है कि श्रमिकों को संरक्षण न दे पाने वाली भाजपा सरकार को तुरन्त त्यागपत्र दे देना चाहिए।

हैरानी की बात यह है कि मजदूर विरोधी भाजपा सरकार श्रमिक कानूनों को तीन साल के लिए स्थगित करते समय तर्क दे रही है कि इससे निवेश आकर्षित होगा जबकि सच्चाई यह है कि इससे श्रमिक शोषण बढ़ेगा अ◌ौर यह श्रमिक असंतोष औद्योगिक वातावरण को अशांति की ओर ले जाएगा। भाजपा सरकार शायद इस सच से बेखबर है कि 'औद्योगिक शांति' निवेश की सबसे आकर्षक शर्त होती है। निवेश तब आएगा जब कानून व्यवस्था ठीक हो। लेकिन यहां तो प्रदेश में अपराधी बेखौफ हैं और पुलिस मुख्यमंत्री के निर्देशानुसार ठोको नीति के रास्ते पर चल रही है। कोरोना के कारण लगे लॉकडाउन में पुलिस द्वारा रिश्वत लेकर पास जारी किए जाने की शिकायतें भी प्रदेश के कई शहरों से अई हैं।

भाजपा सरकार की श्रमनीति से मालिकों को मनमानी करने और श्रमिकों का शोषण करने की खुली छूट मिलेगी। नई श्रम नीति के कानूनों का पालन कराने के लिए कोई भी श्रम अधिकारी उद्योगों के दरवाजे तीन साल तक नहीं जाएगा। मालिक के

दुनिया भर में श्रमिकों ने 8 घंटे काम की जो गारन्टी अपने आंदोलनों से प्राप्त की थी उस पर भाजपा ने काली स्याही पोत दी है।

कारखाने में श्रमिक को अब 12 घंटे काम करना होगा, जो पहले 8 घंटे था। यानी अब मालिक को कानून से हर छूट और श्रमिक के शोषण करने की भी गारन्टी रहेगी। दुनिया भर में श्रमिकों ने 8 घंटे काम की जो गारन्टी अपने आंदोलनों से प्राप्त की थी उस पर भाजपा ने काली स्याही पोत दी है। मई दिवस की उपलब्धियों पर इतना क्रूर और घातक प्रहार तो तानाशाहों के देश में भी नहीं हुआ। शर्मनाक यह है कि इस घनघोर श्रमिक विरोधी फैसले को भाजपा उद्योग हित में लिया मास्टर स्ट्रोक बता रही है।

गौरतलब है कि नयी श्रम नीति बनाकर पूंजीपतियों को खुश करने के क्रम में राज्य में निवेश आने का सपना भाजपा सत्ता में आने के पहले दिन से ही दिखाने लगी थी। कई शीर्ष निवेशक सम्मेलन हो गए। खूब धूमधड़ाका हुआ लेकिन एक धेले का निवेश नहीं आया। समाजवादी सरकार में जो उद्योग आए थे वही आज तक चल रहे हैं। जिन उद्योगपतियों से तब करार हुए थे वही जमीन पर लागू दिखाई दिए हैं।

मजदूरों के हितों के साथ इतना बड़ा खिलवाड़ करनेवाली भाजपा सरकार राज्य कर्मचारियों के मामले में भी उतनी ही असंवेदनशील है। जबकि राज्य कर्मचारियों ने कोरोना संकट की इस घड़ी में सरकार का पूरा साथ दिया है। प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री के सहायता कोष में स्वेच्छया दान के साथ अपने वेतन से की गई कटौती भी उन्होंने स्वीकार कर ली है। इस सबके बावजूद प्रदेश में जून 2021 तक डीए बढ़ोत्तरी और छह भत्तों पर पहले एक साल फिर स्थायी रोक लगा दी गई है। अल्प वेतन भोगी कर्मचारियों की इससे घरेलू अर्थव्यवस्था ही बिगड़ जाएगी और उसका जीना मुश्किल हो जाएगा। अच्छा होता सरकार अपनी तथाकथित नेकनामी दिखाने के लिए जारी किए जानेवाले बड़े-बड़े विज्ञापनों पर रोक लगाती। सरकार व भाजपा नेतृत्व इससे क्यों हिचक रहा है? ■■

चौधरी चरण सिंह ने गांवों को आत्मनिर्भर बनाया

पूर्व प्रधानमंत्री की पुण्यतिथि पर श्रद्धांजलि

बुलेटिन ब्यूरो

समाजवादी पार्टी कार्यालय लखनऊ में पूर्व प्रधानमंत्री श्रद्धेय चौधरी चरण सिंह जी की 33वीं पुण्यतिथि के अवसर पर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी गई। समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव ने उनके चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित कर श्रद्धा व्यक्त की। पूर्व कैबिनेट मंत्री श्री राजेन्द्र चौधरी ने भी चौधरी साहब को श्रद्धांजलि अर्पित की।

श्री अखिलेश यादव ने इस अवसर पर कहा है कि चौधरी चरण सिंह जी ने गांवों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए कृषि को ताकत देने की नीतियों को लागू किया। चौधरी साहब ने सहकारी खेती का विरोध 1959 में नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू के प्रस्ताव पर बोलते हुए कहा था कि भारत के गांव और किसानों तथा छोटी जोत की कृषि के लिए सहकारी खेती की योजना अव्यवहारिक है। उसमें चौधरी चरण सिंह जी उत्तर प्रदेश सरकार में राजस्व मंत्री थे।

श्री यादव ने कहा कि चौधरी चरण सिंह जी ने जनता पार्टी की सरकार के केन्द्र में वित्तमंत्री के समय जो बजट लोकसभा में पेश किया था उसमें कृषि क्षेत्र, गांवों और किसानों की समृद्धि के लिए 70 प्रतिशत की व्यवस्था की थी। उसी आधार पर समाजवादी सरकार में चार वर्ष पूर्व जो बजट उत्तर प्रदेश विधानसभा में प्रस्तुत किया गया उसमें खेती, किसान और गांवों के विकास के लिए बजट में 75 प्रतिशत हिस्सा रखा गया था लेकिन भाजपा से यह आशा करना अर्थहीन है कि उनकी सरकार किसानों के हित के लिए कभी भी संवेदनशील होगी।

श्री यादव ने कहा कि भाजपा नेतृत्व का भी गांवों से दूर-दूर तक कोई सम्बंध नहीं रहा। तभी तो कारपोरेट व्यवस्था को तरजीह देकर कोपरेटिव फार्मिंग की चर्चा शुरू की जा रही है। इसका दूरगामी दुष्परिणाम होगा जिसके कारण किसानों के खेत भी कारपोरेट की पूंजीवादी के जाल में फंस जायेंगे तथा किसान के खेत की जमीन का स्वामित्व खतरे में पड़ सकती है। भाजपा की योजना है कि कृषि कारपोरेट संस्थाओं के हवाले हो जाये। अब भाजपा की कुदृष्टि किसानों की खेती पर है।

श्री अखिलेश यादव ने कहा कि 2022 तक किसानों की आय दोगुनी कैसे होगी, इस पर सरकार चर्चा करने के लिए भाजपा सरकार तैयार नहीं है। और तो और भाजपा की यह घोषणा कि फसल के उत्पादन लागत का डेढ़ गुना किसानों को दिया जायेगा की घोषणा पर अमल आज तक नहीं हुआ। न्यूनतम समर्थन मूल्य तो कभी लागू ही नहीं हुआ।

श्री अखिलेश यादव ने कहा कि समाजवादी पार्टी की सरकार में मण्डियों की योजना पर काम शुरू किया गया था लेकिन भाजपा सरकार की किसान विरोधी नीतियों के कारण उसे ठप्प कर दिया है, जबकि सरकार को किसान की उपज को क्रय करने की व्यवस्था करनी चाहिए। जिससे किसान की फसल की लूट बंद होगी तथा किसानों के साथ न्यायिक व्यवस्था विकसित होगी। किसान गांव और कृषि जब तक आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक आत्मनिर्भर भारत की बात करना दिवास्वप्न ही है।

NSG
COMMANDO

अखिलेश जी की मांग पर पिछड़ी जाति के छात्रों को मिला उनका हक

आईएएस एवं पीसीएस मुख्य परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण

बुलेटिन ब्यूरो

समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव की मांग व उनके हस्तक्षेप के बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने आईएएस एवं पीसीएस की मुख्य परीक्षा के लिए परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण योजना का विस्तार करते हुए अन्य पिछड़ा एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग के अभ्यर्थियों को भी इसका लाभ देने करने का निर्णय लिया है।

श्री अखिलेश यादव ने बयान जारी कर यह मुद्दा उठाते हुए कहा था कि आईएएस/पीसीएस प्रारम्भिक परीक्षा में सफल हुए अनुसूचित जाति तथा सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा के लिए उत्कृष्ट कोटि के कोचिंग केन्दों के माध्यम से परीक्षा पूर्व कोचिंग/प्रशिक्षण दिए जाने की योजना से संबंधित प्रदेश सरकार के दिशा-निर्देश में पिछड़े वर्ग का कोई उल्लेख नहीं है। यह शासन द्वारा पिछड़े वर्गों के साथ सरासर अन्याय है। समाजवादी पार्टी की मांग है कि पिछड़े वर्ग को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए। श्री अखिलेश यादव ने यह मुद्दा उठाया तो सरकार हरकत में आने को विवश हुई।

समाज कल्याण विभाग के बयान में बताया गया कि विभाग द्वारा संचालित 7 परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्रों में से 2 केन्द्रों जिसमें छत्रपति शाहू जी महाराज शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान लखनऊ एवं आदर्श परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र अलीगंज लखनऊ में प्रवेश के लिए अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु स्थान पहले से ही निर्धारित है। अब आईएएस/पीसीएस परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र हापुड़, डा. बीआर आम्बेडकर परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र आगरा, डा. बीआर आम्बेडकर परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र अलीगढ़, संत रविदास परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र वाराणसी एवं न्यायिक सेवा परीक्षा पूर्व प्रशिक्षण केन्द्र प्रयागराज में भी अन्य पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थियों हेतु स्थान निर्धारित करने का निर्णय लिया गया है।

आजम खां के मामले में भाजपा व सरकार की मानसिकता संकीर्ण

बुलेटिन ब्यूरो

समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव द्वारा वरिष्ठ समाजवादी नेता एवं लोकसभा सदस्य श्री मोहम्मद आजम खां, उनकी विधायक पत्नी एवं बेटे को माहे रमजान के पवित्र दिनों में इबादत और रोजे का फर्ज अदा करने के लिए जेल से रिहाई कर सदाशयता का परिचय देने के आग्रह पर उत्तर प्रदेश सरकार ने खामोशी अख्तियार कर ली। श्री आजम खां की पत्नी तजीन फातिमा की जेल में गिरने से हाथ की हड्डी टूट जाने के बाद भी सरकार की तरफ से कोई पहल न किया जाना हैरानी पैदा करता है।

श्री यादव ने अपने बयान में कहा है कि मोहम्मद आजम खां प्रदेश के प्रतिष्ठित राजनेता है। वे कई बार मंत्री और विधायक रह चुके हैं। वे राज्यसभा के सदस्य रहे हैं। वर्तमान में वे रामपुर लोकसभा क्षेत्र से सांसद है। मौलाना मोहम्मद अली जौहर विश्वविद्यालय जैसा उच्च शैक्षणिक संस्थान उन्हीं की देन है। उनकी पत्नी भी विधायक है। दोनों बीमार हैं। आजम साहब के पुत्र श्री अब्दुल्ला

आजम साहब के हर दुःख दर्द में उनके साथः अखिलेश जी

बुलेटिन ब्यूरो

समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव पार्टी के लोकसभा सदस्य व वरिष्ठ नेता मोहम्मद आजम खां के प्रति उत्तर प्रदेश सरकार के रवैए के खिलाफ लगातार मुखर रहे हैं। उन्होंने कहा है कि समाजवादी पार्टी हर दुःख दर्द में उनके साथ खड़ी रहेगी। उन्होंने कहा है कि भाजपा सरकार अपने आचरण से लोकतांत्रिक मान्यताओं और विपक्ष के प्रति सम्मान भावना की अवहेलना कर अनैतिक आचरण कर रही है।

आजम खां साहब की उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए सपा अध्यक्ष ने कहा कि उपलब्धियों की लंबी फेहरिस्त है। युवाओं को उच्चशिक्षा की सुविधा देने के लिए मोहम्मद आजम खां ने अपने प्रयासों से मोहम्मद अली जौहर विश्वविद्यालय की स्थापना की है। समाजवादी पार्टी की सरकार में उन्होंने इलाहाबाद कुम्भ के आयोजन को सफलतापूर्वक पूरी जिम्मेदारी से निभाया जिसकी प्रशंसा विदेशों तक में हुई थी। कुम्भ मेले में आए अखाड़ो के साधु-संतों ने भी आजम साहब के कार्यों की प्रशंसा की थी।

आजम भी विधायक रहे हैं। सरकार इन सबके साथ जो व्यवहार कर रही है वह अशोभनीय है।

श्री अखिलेश यादव ने कहा है कि राज्य में सत्तारूढ़ भाजपा सरकार अपनी संकीर्ण मानसिकता के चलते विपक्ष के नेताओं के प्रति बदले की भावना से काम करने से बाज नहीं आ रही है। रमजान के पवित्र महीने में भी वह इबादत और रोजे की फर्ज अदायगी में बाधा डालने में भाजपा को कोई संकोच नहीं है। भाजपा सरकार की यह हठधर्मिता है कि मानवीय मूल्यों के पालन से भी वह गुरेज कर रही है।

मोहम्मद आजम खां सम्मानित राजनेता, जिनका प्रदेश की राजनीति में भारी प्रभाव है। आजम साहब जीवन भर साम्प्रदायिक शक्तियों के खिलाफ संघर्ष करते रहे हैं। सामाजिक सद्भाव के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे हैं, लेकिन उनके प्रति सत्तादल एवं सरकार विद्वेषपूर्ण व्यवहार कर रही है। उनपर सरकारी इशारे पर तमाम फर्जी मुकदमें दर्ज किए गए हैं और उन्हें जेल में रखकर प्रताड़ित किया जा रहा है। सत्तादल उनकी छवि बिगाड़ने पर तुला है। आजम खां साहब भाजपा की बदले की भावना के शिकार हैं। श्री यादव ने कहा कि भाजपा सरकार के आचरण से समाज का एक वर्ग बुरी तरह आतंकित है। उसमें असुरक्षा की भावना फैल रही है।भाजपा हर मामले को साम्प्रदायिक रंग देने का काम कर रही है। समाज में सद्भाव कायम रखने के लिए आवश्यक है सबके साथ न्याय होना चाहिए, यही शासन की सम्दृष्टि का परिचय होता है।

उल्लेखनीय है कि श्री अखिलेश यादव ने मोहम्मद आजम खां, उनकी पत्नी डॉ तंजीन फातिमा एवं पुत्र अब्दुल्ला आजम की गिरफ्तारी के मुद्दे पर लगातार सरकार को घेरा है जिसका सरकार के पास कोई जवाब नहीं। इन तीनों को जब रामपुर जेल से सीतापुर जेल स्थानांतरित किया गया तो अखिलेश जी तत्काल सीतापुर रवाना हो गए व कारागार में आजम साहब व उनकी पत्नी व पुत्र से मुलाकात की व उनका हालचाल लिया तथा उन्हें अपने एवं पार्टी के समर्थन का भरोसा दिलाया।

श्री यादव ने तब कहा था कि उत्तर प्रदेश शासन द्वारा आजम साहब को अपमानित करने की नीयत से रामपुर कारागार में रात में सोने नहीं दिया। तीन बजे रात में जेल एवं प्रशासनिक अधिकारियों ने मोहम्मद आजम खां को जेल से स्थानांतरण का आदेश दिया और चार बजे उन्हें रामपुर से सीतापुर जेल के लिए रवाना कर दिया गया। डाॅ तंजीन फातिमा की तबियत खराब होने के बावजूद उन्हें भी परेशान किया गया। इससे ही साफ है कि मोहम्मद आजम खां के साथ भाजपा सरकार अन्याय कर रही है। वह बदले की भावना से काम कर रही है। आजम साहब को राजनीतिक षड़यंत्र के तहत फंसाया गया है। प्रशासन का जो रवैया है वह पूर्णतया अनुचित है। सरकार में बैठे लोग रागद्वेष और पक्षपात से परे कर्तव्य पालन की शपथ लेते हैं, उनका आचरण भी तदुनसार होना चाहिए। भाजपा सरकार संविधान को नहीं मानती है। श्री अखिलेश यादव ने कहा कि मुख्यमंत्री जी को और सरकारों को अमर्यादित आचरण नहीं करना चाहिए।

कोरोना की त्रासदी

नाकारा सरकार मजदूर लाचार

दुष्यंत कबीर

कवर व अन्य फोटो : शांतनु बिश्वास

आजाद भारत की सड़कों ने मजदूरों का ऐसा रेला पहले नहीं देखा। पैदल चलते प्रवासी मजदूर। कोई अकेला तो किसी के साथ उसका पूरा परिवार। कभी जो बेहतर रोजगार व जीवन की आस में अपना गृह प्रदेश छोड़कर किसी दूसरे प्रांत को गए थे वे कोरोना से उपजे हालातों व लॉकडाउन के मद्देनजर पैदल ही अपने घरों के लिए चल पड़े। कहीं किसी ट्रक वाले ने रास्ते में कुछ दूरी के लिए बिठा लिया तो थोड़ी राहत वरना प्रवासी मजदूरों के जत्थे हजारों किलोमीटर के सफर का बड़ा हिस्सा पैदल ही पूरा कर रहे हैं। इनमें से कई की रास्ते में चलते-चलते मौत हो गई वहीं कुछ सड़क हादसे की चपेट में आकर जान गंवा बैठे।

कोरोना से निपटने, खासतौर पर प्रवासी मजदूरों को सहूलियत के साथ उनके घरों तक पहुंचाने के मामले में केन्द्र व उत्तर प्रदेश की सरकारें पूरी तरह से नाकाम रही हैं। उनका मजूदुर विरोधी चेहरा सामने आ गया है। इन सरकारों की नाकामी ने साबित कर दिया है कि इवेंट मैनेजमेंट की तरह सरकार चलाने की भारतीय जनता पार्टी की नीतियां कितनी नाकारा हैं। हैरानी की बात है कि विदेशों में फंसे भारतीयों को हवाई जहाज से लाने में तेजी दिखाने वाली भाजपा सरकार अपने देश के मजदूरों को, जो भूख-प्यास से बेहाल हो रहे हैं, उन्हें हजारों किलोमीटर का सफ़र पैदल ही तय करने को विवश कर रही है। इतिहास गवाह रहा है, सड़कों पर उतरी जनता ने सर्वशक्तिमान होने का दम्भ-भ्रम रखने वाले एक-से-एक बड़ों को पैदल कर दिया है।

दरअसल, नोटबंदी और जीएसटी की अचानक घोषणाओं की तरह प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने लॉकडाउन की भी अचानक घोषणा कर देश में विस्थापन और पलायन की जो स्थिति पैदा कर दी है उससे देश अव्यवस्था और असुरक्षा के चक्र में बुरी तरह फंस गया है। कितने ही श्रमिकों की जानें चली गई हैं। भूख-प्यास से दम तोड़ने की भी खबरें आ रही है। भाजपा अमीरों को राहत देने में लगी है। गरीब सड़क पर रेल पटरियों पर जान गंवा रहा है। भाजपा की वोट बैंक की राजनीति का यह खेल लोकतंत्र को कलंकित करने वाला है।

एक तरफ तो सरकार गाल बजा रही है कि वह प्रवासी मजदूरों के लिए श्रमिक एक्सप्रेस नाम से विशेष रेलगाड़ियां चला रही है वहीं स्याह हकीकत यह है कि इन ट्रेनों से वही मजदूर सफ़र कर पा रहे हैं जो टिकट खरीदने की स्थिति में हैं। मजदूरों को मुफ्त सफ़र की सुविधा देकर उन्हें उनके घरों तक पहुंचान सरकार की प्राथमिकता ही नहीं। वह त्रासदी में फंसे मजदूरों को टिकट बेचकर अपने लिए कमाई का जरिया तलाश रही। इससे ज्यादा शर्मनाक बात और क्या हो सकती है भला!

कोरोना संकट की विकट स्थितियों से निबटने में भाजपा सरकार पूरी तरह विफल रही है। इस महामारी के दौर में बड़ी संख्या में श्रमिक बेरोजगारी की ओर सरकार का ध्यान मामले को टालने का दिखाई देता है। लॉकडाउन में सरकार के जबानी आदेशों के बावजूद लोगों की आजीविका का भी संकट है। भाजपा सरकार यहां भी अपने चरित्र के अनुसार भविष्य के सुनहरे सपनों में समाज के विभिन्न वर्गों को भटकाने में लग गई है। वह कोरोना संकट से उत्पन्न स्थितियों का न तो सही आंकलन कर पा रही है और न ही समाधान के सही रास्ते तलाश करने में सक्षम है।

श्री अखिलेश यादव

यहां तक की उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के गृह जनपद गोरखपुर के श्रमिकों ने ही बताया कि भिवंडी से गोरखपुर आने के लिए उनसे 745 रुपये ट्रेन किराया वसूला गया। जबकि भाजपा सरकार उत्तर प्रदेश के श्रमिकों को बाहर से मुफ्त वापस लाने का दावा करते नहीं थकती पर सच तो सच है। प्रदेश के अन्य जनपदों के श्रमिक भी अपनी टिकटें दिखा रहे हैं। लोग कह रहे है कि अगर ये रेल टिकट नहीं है तो क्या बंधक श्रमिकों को छोड़ने पर ली गई फिरौती की सरकारी रसीद है? देशभर के मजदूरों को लग रहा है कि अब वो भाजपा सरकार के बंधक बन गए हैं। श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जा रहा है। इन असहाय गरीबों को बेदर्दी से सड़क पर सैनिटाइज करना संवेदनशून्यता की पराकाष्ठा है। किसी की आंख जली तो किसी का शरीर। गीले कपड़ों के साथ सफर करने की मजबूरी अलग!

सच्चाई यह है कि साल 2022 तक सबको घर देने का वादा करने वाले सत्ताधारी आज बेघर भटकते भूखे प्यासे लोगों को एक वक्त की रोटी तक नहीं दे पा रहे हैं। अमीरों को हवाई जहाज भेजकर एयरलिफ्ट कराने वाली सरकार जमीन पर गाड़ियों के नीचे कुचले जा रहे मजदूरों की जिंदगी के प्रति लापरवाह है। यह सच है कि बुनियाद कभी दिखती नहीं पर ऐसा भी नहीं कि उसे देखना भी नहीं चाहिए। जिन गरीबों के भरोसे की नींव पर आज सत्ता का इतना बड़ा महल खड़ा हुआ है, ऊंचाइयों पर पहुंचने के बाद, संकट के समय में भी उन गरीबों की अनदेखी करना अमानवीय है। बात 'लोकल' की करना और काम कारपोरेट समाज के लिए करना, यह दोहरा चरित्र भाजपा का हमेशा से रहा है। यह 'सबका विश्वास' के नारे के साथ विश्वासघात है।

मजदूरों को हो रही इस परेशानी से व्यथित समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव ने मई दिवस पर अपने संदेश में कहा, "इस साल कोरोना वायरस के संक्रमण काल में आज एक अलग तरह का ही श्रमिक दिवस मना रहे हैं। देश के कई राज्यों में घरों से दूर मजदूर काम और पैसे के लिए परेशान है। भविष्य में बढ़ती बेकारी का संकट अलग भयाक्रांत कर रहा है। इस वजह से किसी शुभकामना या बधाई देने का अवसर तो नहीं है परन्तु भटके हुए श्रमिक अपनों के पास घर सुरक्षित पहुंच जाएं, ये कामना तो हम कर ही सकते हैं।"

मजदूरों की तकलीफ से द्रवित अखिलेश जी

सच्चाई यह है कि साल 2022 तक सबको घर देने का वादा करने वाले सत्ताधारी आज बेघर भटकते भूखे प्यासे लोगों को एक वक्त की रोटी तक नहीं दे पा रहे हैं।

घर लौटते प्रवासी मजदूरों और उनके परिजनों को राहत सामग्री वितरित करतीं पूर्व सांसद श्रीमती डिम्पल यादव।

का मार्मिक संदेश फिर इसकी पुष्टि करता है कि संकट में फंसे इन श्रमिक बंधुओं के साथ समाजवादी आज भी खड़े हैं और हमेशा उनके साथ रहेंगे। साथ ही यह माहौल भाजपा राज में मजदूरों की इस विडम्बना का खुलासा भी करता है कि कैसे देश में विकास की नींव बनाने वाले मजदूर बंधु इन दिनों रोजी-रोटी से वंचित तिल-तिल घुट रहे हैं।

अपने प्रदेश के श्रमिकों के साथ यूपी की भाजपा सरकार गैरों जैसा व्यवहार कर रही है। मुंबई से 18 दिन पैदल चलकर महोबा पहुंचे उत्तर प्रदेश के श्रमिकों को महोबा प्रशासन ने उलटे मध्य प्रदेश भेज दिया। भाजपा सरकार कागजों पर ही श्रमिकों की मदद का ढोंग कर रही है।

सरकारी अव्यवस्था और अदूरदर्शिता का हाल यह है कि प्रदेश की भाजपा सरकार के पास राज्य के अंदर और बाहर के प्रदेशों में काम करने वालों की सही संख्या ही नहीं है। जब राज्य सरकार के पास प्रवासी और राज्य के श्रमिकों का सही आंकड़ा ही नहीं है तो वह रोजगार कैसे देगी? उनके रहने-खाने की व्यवस्था भी लम्बे समय तक कैसे होगी?

समाजवादी पार्टी इसलिए लगातार विधानसभा का विशेष सत्र बुलाने की मांग कर रही है ताकि कोरोना संक्रमण काल में रोजी-रोटी के सवाल पर भी सार्थक विचार विमर्श हो सके। भाजपा का रवैया यह जताने का है कि वही सब कुछ कर रही है।

रोजी-रोटी की विषम समस्या से जूझ रहे श्रमिकों को मनरेगा में काम देने का एलान तो है लेकिन उन्हें काम नहीं मिल रहा है। रोज कमाकर गुजारा करने वाले दिहाड़ी मजदूरों के परिवारों का जीना मुहाल है। अभी तक उनको मदद नहीं मिल पाई है। राशन कम या खराब मिलने की आम शिकायते हैं। अति निम्न वर्ग के गरीबों को कोई पूछने वाला नहीं है। वे भुखमरी झेल रहे हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री की टीम इलेवन के पास बेकारों का सही-सही आंकड़ा भी नहीं है, उन्हें यह भी पता नहीं कि कितने अर्ध-बेरोजगार नौजवान है। युवा ऊर्जा को कहां से रोजगार देंगे। यह भी भाजपा को बताना होगा कि करोड़ों को कितने वर्षों में रोजगार मिल सकेगा? जबकि भाजपा सरकार का कार्यकाल डेढ़ वर्ष ही बचा है।

रोजी-रोटी की विषम समस्या से जूझ रहे श्रमिकों को मनरेगा में काम देने का एलान तो है लेकिन उन्हें काम नहीं मिल रहा है। रोज कमाकर गुजारा करने वाले दिहाड़ी मजदूरों के परिवारों का जीना मुहाल है।

भाजपा सरकार ने इन श्रमिकों को मनरेगा और गांव के दूसरे उद्योगों में खपाने का जो निर्णय लिया है वह पूर्णतया अव्यवहारिक है। उससे प्रदेश में असंतोष और आक्रोश बढ़ेगा। पहले से ही यहां संगठित क्षेत्रों में छंटनी और असंगठित क्षेत्रों में नौकरी के अभाव से बेरोजगारी चरम पर है। जब बेरोजगारी झेल रहे नौजवानों को न तो नौकरी न ही बेकारी भत्ता मिल पा रहा है तो दूसरे राज्यों एवं उत्तर प्रदेश के महानगरों में रोजगार के लिए भटक रहे गांवों के करोड़ों बेरोजगार नौजवानों को कहां से रोजगार में खपाया जा सकेगा? भाजपा की यह जुमलेबाजी इस बार बहुत भारी पड़ेगी।

तकलीफों का कारवां!

रिपोर्ट एवं फोटो: सुमित कुमार

कोरोना काल में भारत के राजमार्गों पर हैरान करनेवाला मंजर दिख रहा है। देश की मेहनतकश आबादी बहुत बड़ी तादाद में हजारों किलोमीटर की दूरी नाप रही है। ये वे प्रवासी मजदूर और उनके परिवार हैं जिन्होंने शहरों को बनाया। आज उन्हें देश की सरकार ने ही सड़कों पर बेगाना छोड़ दिया है। कोरोना के कारण हुए लॉकडाउन ने इन कामगारों को शहरों में बेरोजगार कर दिया तो उन्होंने अपने गावों को लौटने का मन बनाया। गरीबों और मजदूरों के नाम पर सरकार बनानेवाली भाजपा ने इन्हें सम्मानपूर्वक सरकारी खर्चे पर उनके घरों तक पहुंचाने की व्यवस्था करने के बजाय उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया। ट्रेनें चलवाईं लेकिन मजदूरों से किराया वसूला। जो किराया न दे पाए वे पैदल ही चल दिए। फिर भी सरकार का दिल नहीं पसीजा। नतीजतन भारत की सड़कों ने मेहनतकश मजदूरों व उनके परिजनों को भूख, प्यास, थकान और बीमारी से तड़पते-जूझते हुए देखा। सड़क हादसों में दर्जनों की जान तक चली गई लेकिन सत्तारूढ़ पार्टी ने इनके नाम पर सियासत को ही तवज्जो दी, इनकी तकलीफों पर मरहम नहीं लगाया। इतिहास सत्ता के इस क्रूर चेहरे को याद रखेगा और वक्त इसका हिसाब करेगा!

25-32
आपातकालिन खिडकी
EMERGENCY WINDOW

मण्डी एक्सप्रेस

TATA STEEL

अधिक बड़े वाहन
Oversized Vehicl

कोरोना संकट से निपटने में सरकार फेल
भ्रष्टाचार का बोलबाला

बुलेटिन ब्यूरो

वैश्विक महामारी कोरोना से उपजे संकट से निपटने में उत्तर प्रदेश की सरकार न सिर्फ बुरी तरह लचर साबित हुई है बल्कि इस संकट का फायदा लेकर उच्च स्तर पर भ्रष्टाचार भी खूब फला फूला। खुद भाजपा के मेयर और विधायकों ने ही अपनी सरकार पर तमाम अनियमितताओं के आरोप लगाए हैं। इसके बावजूद स्वास्थ्य विभाग में भ्रष्टाचार की शिकायतों पर कोई ठोस कार्रवाई नहीं हुई। दवा, मास्क और सैनिटाइजर के साथ रैपिड टेस्ट किट की खरीद में जबर्दस्त घोटाले के दोषियों पर कार्रवाई के बजाय लीपापोती ही होती दिखाई दे रही है।

अस्पतालों को खराब गुणवत्ता वाले पीपीई किट न इस्तेमाल करने का पत्र खुद यूपी मेडिकल सप्लाई कारपोरेशन के डीजी ने लिखी लेकिन सबसे हैरानी की बात यह कि किट खरीद के घोटालेबाजों को चिह्नित कर सजा देने की जगह यूपी सरकार ने इसकी जांच बिठा दी कि डीजी की चिट्ठी लीक कैसे हो गई!

वहीं कोरोना से निपटने के मामले में यूपी सरकार की उपलब्धि यह है कि रोजाना किसी टीम इलेवन के साथ मुख्यमंत्री की बैठक व लंबे-चौड़े निर्देशों के बावजूद हालात रोजना बिगड़ते ही जा रहे हैं। कोरोना से निपटने में कामयाबी की कथित कहानी बताकर जिस आगरा मॉडल की प्रधानमंत्री से तारीफ करवाई गई थी उस आगरा मॉडल की कलई खुल चुकी है। ताजनगरी का बड़ा हिस्सा हॉटस्पाट है। रोजाना नए मामले बड़ी संख्या में सामने आ रहे हैं। कामयाबी की झूठी गढ़ी गई कहानी लगातार गम्भीर लापरवाही और बदइंतजामी से बेपर्दा हो चुकी है। उत्तर प्रदेश के बदहाल क्वॉरंटाइन सेंटरों में भारी दुर्दशा है। वहीं अस्पतालों मं स्वास्थ्यकर्मी पीपीई, टेस्ट किट, सैनिटाइजर, वेतन समय पर न मिलने पर प्रदर्शन कर रहे हैं। तमाम दावों के बावजूद कई हॉटस्पाट में फंसे लोगों की जिंदगी नर्क हो गई है। वहां लोगों को बुनियादी सुविधाएं तक नहीं मिल रही हैं।

कोरना काल में यूपी में भ्रष्टाचार भी खूब फलफूल रहा है। अस्पतालों को घटिया पीपीई की सप्लाई कर चिकित्सकों व अन्य स्वास्थ्यकर्मियों की जान से खिलवाड़ किया

गया। मुख्यमंत्री की अपनी टीम इलेवन के साथ रोज़ाना बैठक के बाद भी पीपीई किट की गुणवत्ता मानक के अनुरूप नहीं होना व घटिया किट मेडिकल कालेजों में सप्लाई कर देना अंधेर नगरी, चौपट राजा की याद दिलाता है। टीम इलेवन और मुख्यमंत्री इस घोटाले की जिम्मेदारी से पलायन नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, इस तरह के और तमाम घोटालों की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता लेकिन मुख्यमंत्री इस पर खामोश हैं। समाजवादी पार्टी ने इसपर सवाल उठाते हुए कहा है कि क्या कारण है कि इतना बड़ा घोटाला हो गयाऔर मुख्यमंत्री अनजान बने रहे?

राशनकार्ड धारकों को ही जब निर्धारित राशन नहीं मिल पा रहा है तो उन गरीबों, जरूरतमंदों को कौन पूछेगा जिनके पास अपने राशनकार्ड या आधारकार्ड नहीं है।

चु कि कोरोना के दौर को भ्रष्टाचार का जरिया बनाने पर ध्यान अधिक है इसलिए बीमारी से निपटने व लॉकडाउन के मद्देनजर जरूरी उपाय करने में नाकामियो की लंबी फेहरिस्त है।

लखनऊ और प्रदेश के कई अन्य जनपदों में जहां 'हाटस्पाट' है वहां भी न तो लाकडाउन का पूरा पालन हो पा रहा है और न ही उन स्थानों के निवासियों को आवश्यक खाद्य पदार्थों तथा दूध आदि की ठीक से सप्लाई हो पा रही है। जहां-जहां लाॅकडाउन सख्ती से लागू होने की बातें कही गईं वहां वहां दुगने कोरोना केस अ गए। उत्तर प्रदेश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) कामयाब नहीं है। इसमें लगातार उजागर हो रहे प्रदेशव्यापी गड़बड़झालों की फेहरिस्त भी लंबी है। सरकारी सस्ते गल्ले की दुकानों में भ्रष्टाचार का अालम यह है कि अच्छी गुणवत्ता का चावल निकाल कर ईंट, पत्थर और मिट्टी चावल में मिलाकर सरकारी सस्ते राशन की दुकानों से दिया जा रहा है। इससे अधिक शर्मनाक एवं घोर निंदनीय कुछ हो नहीं सकता।

जहां एक ओर स्वयंसेवी संगठन और समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ता अपने साधनों से जरूरतमंदों को राशन और भोजन उपलब्ध करा रहे हैं वहीं सरकारी कोटेदार गरीबों के राशन पर डाका डालने से नहीं चूक रहे हैं। राशन वितरण में लगातार अनियमितताएं बरती जाने की शिकायतें आ रही है। सरकारी तंत्र पीडीएस के मामलों में 'घोटाला' राजनीति ही चला रहा है इसमें उसके अपने स्वार्थ हैं। राशनकार्ड धारकों को ही जब निर्धारित राशन नहीं मिल पा रहा है तो उन गरीबों, जरूरतमंदों को कौन पूछेगा जिनके पास अपने राशनकार्ड या आधारकार्ड नहीं है। यह भी जरूरी नहीं है कि हर गरीब-मजदूर राशन वितरण केन्द्रों तक पहुंच पाए, इसलिए समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ता स्वास्थ्य निर्देशों का पालन करते हुए दूरस्थ बस्तियों तक खाद्य सामग्री पहुंचा रहे हैं। इसमें भी प्रशासन की राजनीति कई जगह व्यवधान पैदा कर रही है, यह सर्वथा अनुचित है।

समाजवाद जरूरी है

मौजूदा दौर में समाजवादी विचारधारा पर सवाल उठाने व उसे अप्रासंगिक ठहराने की कोशिशें तेज हैं। इससे यह भी साबित होता है कि कैसे प्रतिक्रियावादी शक्तियों को समाजवाद से ही खुद के लिए सबसे बड़ी चुनौती मिलती दिखाई देती है। समाजवाद न सिर्फ ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य बल्कि वर्तमान हालात में भी कितना जरूरी व प्रासंगिक है यह कोरोना महामारी से उपजे हालात में फिर रेखांकित हो रहा है। इस वैश्विक चुनौती से निपटने के लिए तमाम सरकारों को अपने फैसलों के केन्द्र में समाजवादी सोच को ही तवज्जो देनी पड़ रही है। समाजवादी सोच के तहत गठित व संचालित सार्वजिनक क्षेत्र ही राहत के उपायों में अग्रणी है। पेश है, भारत में समाजवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसपर हो रहे हालिया हमलों की वजहों व इसके बावजूद लगातार कायम इस विचारधारा की अहमियत का विश्लेषण करता लेख:

रविकांत
सहायक प्रोफेसर, हिंदी, लखनऊ विवि

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ यह कहते नहीं थकते कि अब समाजवाद की जरुरत नहीं है। बकौल उनके, उत्तर प्रदेश में रामराज्य है। राज्यसभा के सदस्य व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारक राकेश सिन्हा सदन में प्राइवेट मेंबर बिल लाने की बात कह चुके हैं। जिसमें उनकी माँग है कि संविधान की प्रस्तावना से 'समाजवादी' शब्द निकाल दिया जाए। ऐसे में एक सवाल पूछा जाना चाहिए कि क्या भारतीय जनता पार्टी और उसका पितृ संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ समाजवाद शब्द और उसकी भावना से डरे हुए हैं। क्या उनके हिन्दुत्व या हिंदू राष्ट्र के एजेंडे को लागू करने में समाजवाद बाधक बन रहा है?

जैसा कि चर्चित उपन्यासकार और वामपंथी एक्टिविस्ट अरुंधती राय कहती हैं कि भारत एक हिन्दू राष्ट्र बन चुका है, क्या इसे स्वीकार कर लिया जाए? क्या भाजपा घोषित तौर पर हिन्दू राष्ट्र के एजेंडे पर आगे बढ़ चुकी है ? संभवतया इसीलिए वह संविधान की मूल भावनाओं और स्थापनाओं को मिटा देना चाहती है। चर्चित कानूनविद और संविधान विशेषज्ञ प्रो.फैजान मुस्तफा का मानना है भाजपा सरकार समाजवादी शब्द को इसलिए हटाना चाहती है ताकि सेकुलर शब्द को आसानी से हटाया जा सके।असली खतरा धर्मनिरपेक्षता पर है।लेकिन ऐसा लगता है कि पहले ही धर्म निरपेक्षता की भावना को पब्लिक स्फीयर में महत्वहीन बना दिया गया है।

2019 का लोकसभा चुनाव जीतने के बाद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बड़े अभिमान के साथ कहा था कि इस चुनाव में किसी भी पार्टी की हिम्मत नहीं हुई ,धर्मनिरपेक्षता की बात करने की। क्या वास्तव में भारत अब धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र नहीं रहा? क्या कारण हैं कि नरेन्द्र मोदी ऐसा कहने में जरा भी नहीं हिचकिचाए? दरअसल आज भारत में धर्मनिरपेक्षता की बातें करने पर देशद्रोही ठहरा दिया गया है। भाजपा और आरएसएस ने पूरे देश में ऐसा माहौल बनाया है। दरअसल भाजपा और उसका पूर्व अवतार जनसंघ हमेशा से बहुसंख्यकवादी राजनीति करते रहे हैं। उसने सांप्रदायिकता के दाग को तमगे की तरह इस्तेमाल किया है। सांप्रदायिक राजनीति से भाजपा ने खुद को हिन्दू हितैषी के रूप में प्रदर्शित किया।इसका ही नतीजा है कि आज सेकुलर शब्द का मतलब हिन्दू विरोधी हो गया है।

तो क्या अब सेकुलर शब्द की तरह समाजवाद को भी बदनाम करके नष्ट करने की साजिश रची जा रही है ? क्या दक्षिणपंथी राजनीति का अगला निशाना समाजवाद है? संसद के मार्फत समाजवाद को मिटाए जाने का खेला जा रहा यह खेल क्या इतना आसान है? सब जानते हैं कि

दरअसल भाजपा और उसका पूर्व अवतार जनसंघ हमेशा से बहुसंख्यकवादी राजनीति करते रहे हैं। उसने सांप्रदायिकता के दाग को तमगे की तरह इस्तेमाल किया है। सांप्रदायिक राजनीति से भाजपा ने खुद को हिन्दू हितैषी के रूप में प्रदर्शित किया।इसका ही नतीजा है कि आज सेकुलर शब्द का मतलब हिन्दू विरोधी हो गया है।

प्राइवेट मेंबर बिल का कोई विशेष महत्व नहीं होता और इसे पारित कराना इतना आसान भी नहीं होता। लेकिन इसके माध्यम से सदन के पटल पर ऐसी दलीलें रखी जा सकती हैं जिससे जनमानस को यह संदेश दिया जा सके कि संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित समाजवाद शब्द गैर जरूरी और महत्वहीन है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में समाजवाद की ऐसी व्याख्या की जा सकती है जिससे पढ़ा लिखा मध्यवर्ग भी भ्रमित हो जाए । साथ ही सोशल मीडिया पर भाजपा के आई.टी. सेल को अधकचरा ज्ञान परोसने का मौका मिल सके। इतिहास गवाह है कि पहले भी इस तरह के कारनामे होते रहे हैं। महात्मा गाँधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे ने अदालत में यह स्वीकार कर लिया कि उसने गाँधी की हत्या की है।उसने अदालत से यह माँग की कि उसे गाँधी हत्या या 'वध' के कारणों पर अदालत में विचार रखने का मौका दिया जाए। गोडसे अदालत में सभी पेशियों को मिलाकर करीब नौ घंटे बोला। इसमें उसने गाँधी की हत्या को सही ठहराने वाले ढेरों कुतर्क दिए। उन कुतर्कों को आज का युवा पढ़ता है और गोडसे को देशभक्त समझने लगता है। राष्ट्रीय आंदोलन के चरित्रों को लांछित करने का प्रोजेक्ट अर्से से चल रहा है।अब सिद्धांतों और मूल्यों की बारी है।

राकेश सिन्हा के मार्फत आने वाले दिनों में अगर सरकार संविधान से समाजवादी शब्द निकलवाने में कामयाब हो जाती है तो क्या भाजपा और संघ भारत को हिन्दू राष्ट्र की घोषित कर सकते हैं? एक सवाल यह भी है कि हिन्दू राष्ट्र के लिए समाजवाद क्यों खतरा है? क्या दक्षिणपंथी हिन्दूवादी संगठन समाजवाद को रामराज्य जैसे शब्द से रिप्लेस करना चाहते हैं। जिस तरह से धर्मनिरपेक्षता यानी सेकुलर को बदनाम और कलंकित किया गया है ,क्या समाजवाद को भी कमजोर करना इतना आसान है?

भाजपा आरएसएस और उसके तमाम उग्र हिन्दूवादी संगठन वामपंथ को विदेशी विचार घोषित करने में लगे हैं। ऐसा लगता है कि अपने इसी हथियार से ये शक्तियां समाजवाद शब्द और उसके विचार को लोकवृत्त में दुष्प्रचारित करेंगी और एक ऐसा नैरेशन गढ़ेंगी जिससे जनमानस इसके विरुद्ध खड़ा हो जाए। अब भी अगर

समाजवाद का बचाव नहीं किया गया तो संविधान के रहते हुए भी हिन्दू राष्ट्र को आने से कोई नहीं रोक पाएगा। लेकिन सवाल यह है कि इसके लिए हमारी तैयारी क्या है? क्या संसद से लेकर विधानसभाओं में बहस के लिए विपक्ष दलीलें पेश करने के लिए तैयार है? क्या प्रबुद्ध वर्ग सक्रिय रूप से इस तंत्र और षडयंत्र का मुकाबला करने के लिए तैयार है?

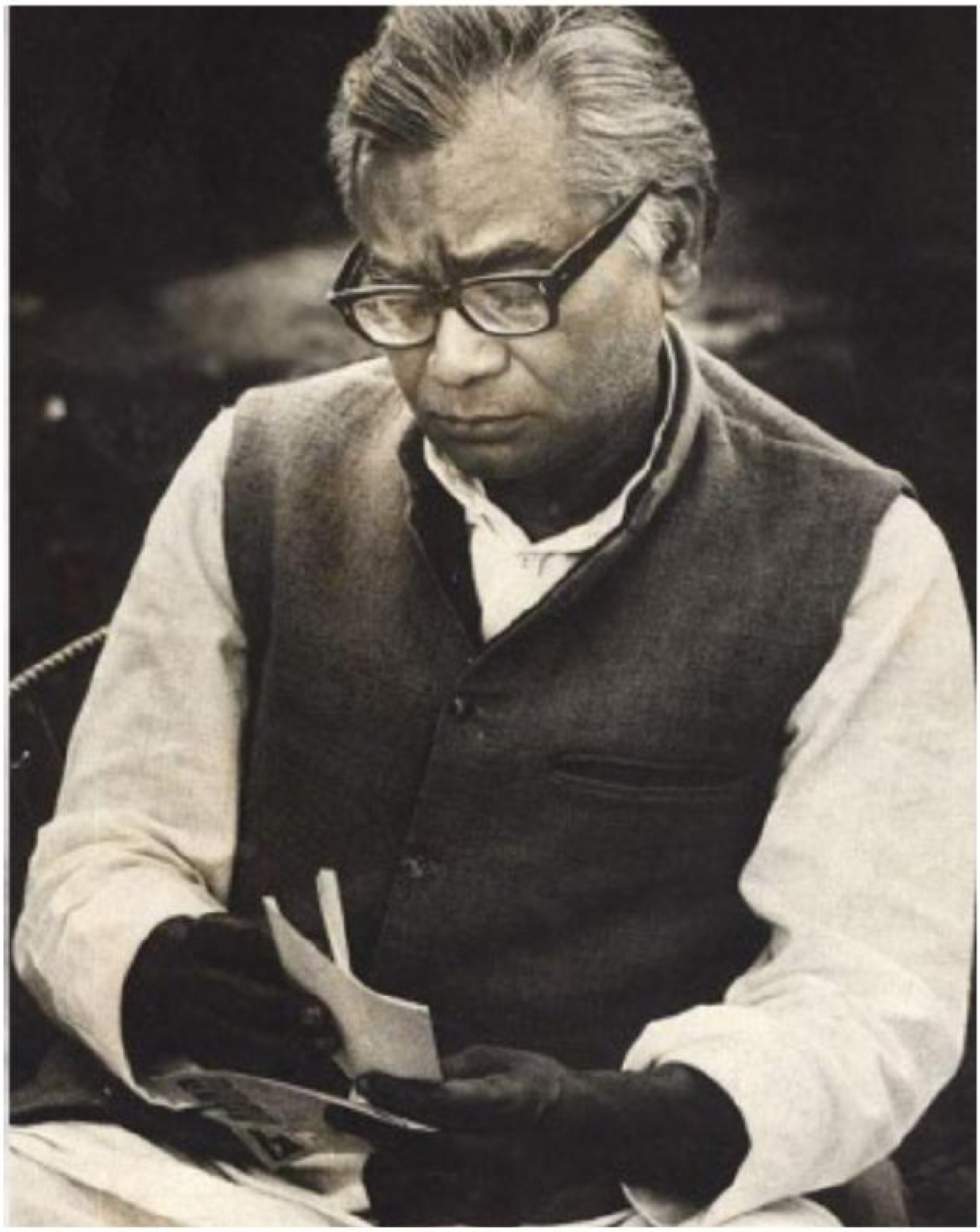

आरएसएस यानी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन ने संविधान का हमेशा ही विरोध किया है। संघ के मुखपत्र 'आर्गनाइजर' के 30 नवंबर 1949 के संस्करण में लिखा गया कि "भारत के नये संविधान में सबसे बुरी बात यह है कि उसमें कुछ भी भारतीय नहीं है।...उसमें भारत की प्राचीन संवैधानिक विधि का एक निशान तक नहीं है। न ही उसमें प्राचीन भारतीय संस्थाओं ,शब्दावली या भाषा के लिए कोई जगह है।...उसमें प्राचीन भारत में हुए अनूठे संवैधानिक विकास की तनिक भी चर्चा नहीं है। मनु के नियम,स्पार्टा के लाईकरगस और फारस के सोलन के बहुत पहले लिखे गए थे। आज भी मनु के नियम, जिन्हें मनुस्मृति में प्रतिपादित किया गया है,पूरी दुनिया में प्रशंसा के पात्र हैं और भारत के हिन्दू स्वतःस्फूर्त ढंग से उनका पालन करते हैं और उनके अनुरूप आचरण करते हैं। परंतु हमारे संवैधानिक पंडितों के लिए इस सबका कोई अर्थ नहीं है।"

संघ ने हमारे राष्ट्रध्वज की भी आलोचना की। उसका मानना था कि तीन का अंक अशुभ होता है।इसलिए तिरंगा झंडा ठीक नहीं है। इतना ही नहीं दशकों तक संघ ने अपने नागपुर कार्यालय पर राष्ट्रीय दिवसों पर भी तिरंगा नहीं फहराया। संघ, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित राष्ट्रगान का इस आधार पर लंबे समय तक विरोध करता रहा कि इसमें अधिनायक शब्द इंग्लैंड के राजा के लिए प्रयुक्त हुआ है।आज उग्र राष्ट्रवाद को उभारकर संघ और भाजपा इन्हीं राष्ट्रीय प्रतीकों के माध्यम से अपने राजनीतिक और विचारधारात्मक प्रतिद्वन्द्वियों से प्रतिशोध लेने में लगा हुआ है।

संघ और जनसंघ के अतिरिक्त अन्य हिन्दूवादी राजनीतिक दल और संगठन लगातार संविधान और हमारे दूसरे राष्ट्रीय प्रतीकों की आलोचना करते रहे हैं। आजादी के दरम्यान काशी के स्वामी करपात्री के नेतृत्व में रामराज्य परिषद और गोरखनाथ पीठ के महन्त दिग्विजयनाथ के नेतृत्व में हिन्दू महासभा ने संविधान सभा के विरोध में दिल्ली में प्रदर्शन किया था। महन्त दिग्विजयनाथ और स्वामी करपात्री कह रहे थे कि मनुस्मृति के होते हुए हमें नए संविधान की जरूरत नहीं है। डॉ भीमराव अंबेडकर पर प्रहार करते हुए उनका बयान था कि एक अछूत के द्वारा संविधान लिखा जाना घोर अन्याय और अनाचार है। इन्हीं करपात्री के विरोध करने पर हिन्दू कोड बिल (1955) पारित नहीं हो पाया था और डॉ आंबेडकर ने नाराज होकर नेहरू मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया था। हिन्दू कोड बिल द्वारा सदियों से

असमानता,शोषण और अन्याय की शिकार हिन्दू स्त्रियों को पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्त करके कानूनी रूप से पुरुषों के बराबर अधिकार देने का प्रावधान किया जाना था।इस बिल के माध्यम से पिता की संपत्ति में पुत्री का अधिकार और तलाक देने पर गुजारा भत्ता जैसे कानून बनाकर डा आंबेडकर स्त्रियों के जीवन को सुरक्षित और संरक्षित करना चाहते थे।करपात्री ने बिल का विरोध करते हुए कहा कि इससे हिन्दू परिवार विखंडित होंगे।आगे वे कहते हैं कि सनातनी हिन्दू व्यवस्था में स्त्री पुरुष संबंध जन्म-जन्मांतर के होते हैं।दरअसल यह समाजवाद और विशेषकर राममनोहर लोहिया के समाजवाद पर सीधा हमला था।

लोहिया जब सप्तक्रांति की बात करते हैं तो उनका मानना है कि दुनिया में पहली क्रांति स्त्री अधिकार और समता के लिए होगी।करपात्री का रामराज्य सीधे तौर पर स्त्री विरोधी और वर्ण-जाति समर्थक है।समाजवाद वर्ण,जाति और लिंग पर आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव को खारिज करता है।करपात्री,सावरकर और गोलवलकर जो नहीं कर सके,उनके उत्तराधिकारी आज सत्ता में आने के बाद अपने गुरुओं के मंसूबे पूरे करने पर आमादा हैं।

अब सवाल यह है कि योगी का रामराज्य क्या है? क्या यह गाँधी का रामराज्य है? दरअसल आधुनिक भारत की राजनीति में रामराज्य शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम गाँधी ने ही किया था। औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त जिस भारत की कल्पना गाँधी करते हैं,उसे वे रामराज्य कहते हैं।जाहिर तौर पर यह रामराज्य मध्यकालीन भक्तकवि तुलसीदास का रामराज्य नहीं है।गाँधी के रामराज्य का आधार धर्म नहीं है।यह वर्णानुक्रम और पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर भी आधारित नहीं है जिसमें आदिवासी कोल किरात हनुमान जामवंत सरीखे लड़ाका सेवक होते हैं।गाँधीजी का रामराज्य एक समाजवादी राज्य है।इसका लक्ष्य है-अंतिम व्यक्ति की आँखों से आँसू

समाजवाद वर्ण,जाति और लिंग पर आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव को खारिज करता है। करपात्री, सावरकर और गोलवलकर जो नहीं कर सके,उनके उत्तराधिकारी आज सत्ता में आने के बाद अपने गुरुओं के मंसूबे पूरे करने पर आमादा हैं।

पोंछना।स्वयं गाँधी अवश्य धार्मिक हैं।लेकिन उनका धर्म व्यापक है।इसमें सर्वधर्मभाव निहित है।लेकिन कितनी अजीब बात है कि आज गाँधी को सनातनी सिद्ध किया जा रहा है,समाजवादी चिंतक नहीं।गाँधी का समाजवाद अर्थात रामराज्य सर्वोदय पर आधारित है जिसमें ट्रस्टीशिप, अहिंसा और सत्याग्रह पर विशेष जोर दिया गया है।

योगी का रामराज्य अगर गाँधी का रामराज्य है तो भाजपा और संघ गोडसे के विचारों और कृत्यों के साथ क्यों हैं? भाजपा में आज कई ऐसे नेता हैं जो गोडसे जिंदाबाद बोलते हैं।वे उसे देशभक्त कहते हैं। लोकसभा चुनाव के समय भोपाल से भाजपा की प्रत्याशी और मालेगाँव बम विस्फोट (2008) की आरोपी प्रज्ञा ठाकुर द्वारा नाथूराम गोडसे को देशभक्त बताने वाले बयान पर नरेन्द्र मोदी ने ट्वीट कर इतना कहा कि वे प्रज्ञा ठाकुर को कभी दिल से माफ नहीं कर पाएंगे। इसके बाद सबने देखा कि चुनाव जीतकर संसद पहुँची प्रज्ञा ठाकुर की अगवानी खुद नरेन्द्र मोदी ने की। राकेश सिन्हा प्राइवेट मेंबर बिल लाकर समाजवादी शब्द हटाने की जो कोशिश रहे हैं, वह कोई अनौखी और नई बात नहीं है। पहले भी सार्वजनिक तौर पर दक्षिणपंथी शक्तियाँ समाजवाद की मुखर आलोचना करती रही हैं।तर्क यह दिया जाता है कि संविधान की प्रस्तावना में 'समाजवादी' शब्द आपातकाल के दौरान हुए बयालीसवें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया था।इसलिए यह मूल संविधान का हिस्सा नहीं है।अगर इस तर्क को माना जाए तो इस संशोधन में तीन नए शब्द-समाजवादी,पंथनिरपेक्ष और अखंडता-जोड़े गए थे।पंथनिरपेक्षता पर तो भाजपा-संघ को पहले से ही ऐतवार नहीं है।लेकिन अखंडता शब्द का क्या करेंगे? मूल संविधान के पाठ में न होने की वजह से क्या अखंडता शब्द को हटा दिया जाए?

दूसरा तर्क दिया जाता है कि समाजवाद विदेशी विचार है।तो क्या राकेश सिन्हा बताएंगे कि आरएसएस का गणवेश देशी है या विदेशी? सब जानते हैं कि संघ की पूरी परिकल्पना और वेशभूषा मुसोलिनी और

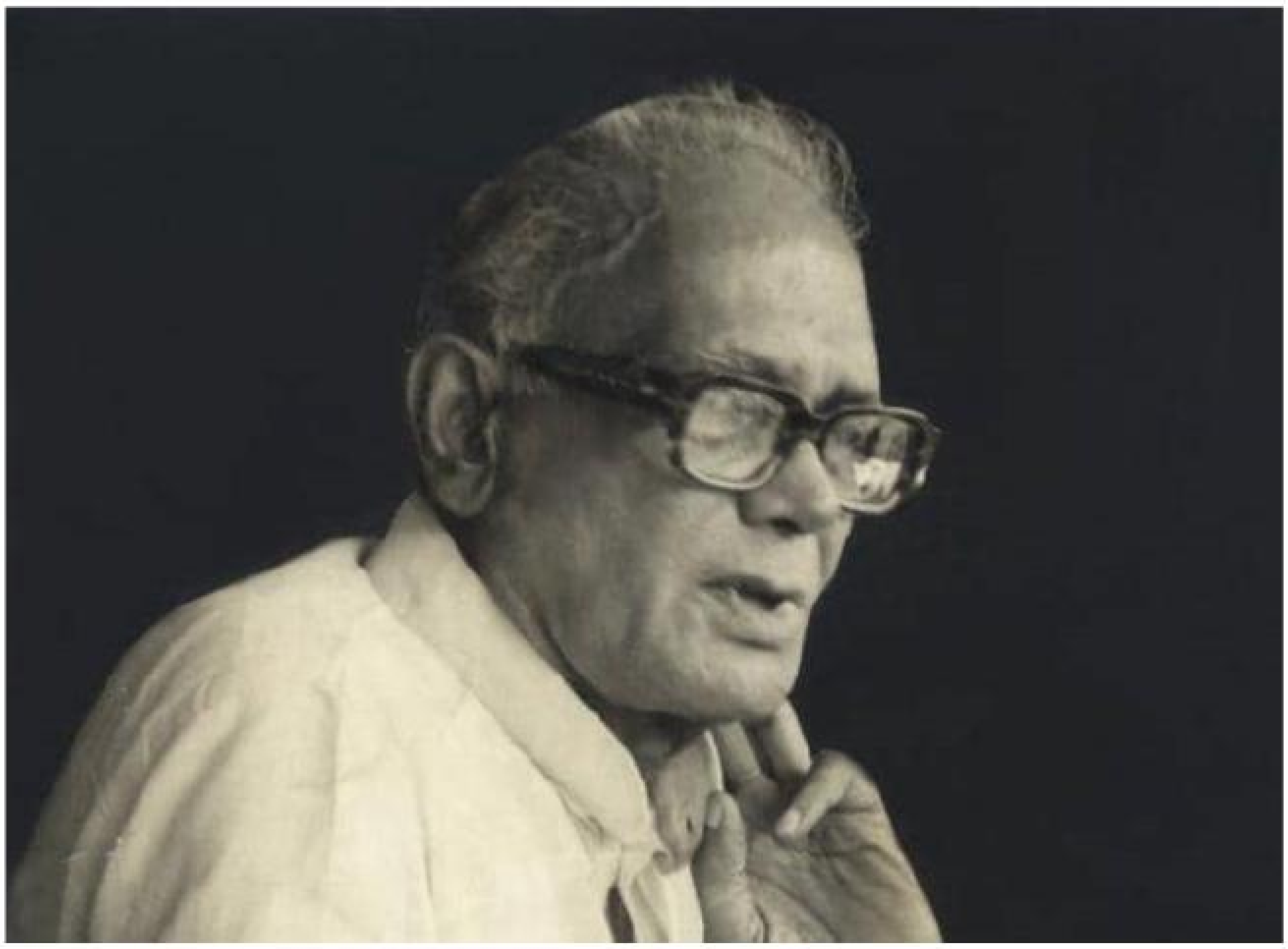

बेमानी है।लेकिन हकीकत यह है कि आज भी भारत की राजनीति लोक लुभावनवाद पर आधारित है। प्रधानमंत्री आवास योजना,शौचालय योजना,किसानों के खातों में धनराशि भेजने सरीखी तमाम योजनाएं मोदी सरकार की लोक लुभावनवादी राजनीति का हिस्सा हैं।दरअसल भारत जैसे बहुलतावादी देश में लोक लुभावनवादी राजनीति से बचा भी नहीं जा सकता। लोक लुभावनवाद जैसा शब्द भले ही अस्सी के दशक में शार्टकट चुनावी राजनीति के तौर पर आया हो लेकिन इसकी जड़ें समाजवादी सिद्धांत में ही हैं।

हिटलर की सोच पर आधारित है।क्या संघ और भाजपा के लिए मुसोलिनी और हिटलर देशी हैं? अथवा संघी ही विदेशी तो नहीं हैं? तमाम दलित बहुजन और आदिवासी संगठन आर्यों को विदेशी मूल का मानते हैं।इस विमर्श का इतना प्रभाव है कि कुछ समय पूर्व मोहन भागवत ने एलान किया कि आर्य भारत के मूल निवासी हैं। जबकि ऐतिहासिक स्रोत कुछ और ही दावा कर रहे हैं। हाल ही में राखीगढ़ी में हजारों साल पुराना एक मानव कंकाल मिला है। इसके आधार पर निष्कर्ष दिया गया है कि आर्य इस देश के मूल निवासी नहीं हैं।दूसरी बात,इक्कीसवीं सदी में समाजवाद को विदेशी कहने का क्या तुक बनता है।भूमंडलीकरण के इस दौर में खाना,कपड़ा और तमाम चीजें दुनिया के तमाम देशों से आप ले सकते हैं लेकिन विचार क्यों नहीं?

सच तो यह है कि भारतीय समाजवाद मार्क्सवाद की नकल नहीं है।गाँधी और लोहिया जैसे राजनीतिक विचारकों ने समाजवाद को भारतीय संदर्भ में विकसित किया है।समाजवादी शब्द को हटाने के लिए

आज भी भारत की राजनीति लोक लुभावनवाद पर आधारित है। प्रधानमंत्री आवास योजना,शौचालय योजना,किसानों के खातों में धनराशि भेजने सरीखी तमाम योजनाएं मोदी सरकार की लोक लुभावनवादी राजनीति का हिस्सा हैं।

एक अन्य तर्क यह भी हो सकता है कि भारतीय राष्ट्र-राज्य अब समाजवादी रहा ही नहीं।1991 में बतौर वित्तमंत्री डा.मनमोहन सिंह ने नई आर्थिक नीति लागू करके पूँजीवाद के लिए रास्ता साफ कर दिया था।परमिट राज खत्म हो गया।उदारीकरण और निजीकरण की शुरूआत हो गई।इसलिए समाजवादी शब्द का बने रहना

आज एक फीसदी लोगों के पास सत्तर फीसदी धन संपदा है।देश पूँजीवादी व्यवस्था की ओर तेजी से बढ़ रहा है।इसने असमानता और आर्थिक शोषण को बढ़ाया है।अमीरी गरीबी का फासला बहुत बढ़ गया है।जब तक यह असमानता और गरीबी रहेगी तब तक समाजवादी मूल्यों की जरूरत बनी रहेगी। इस मंदी के दौर ने हमें सिखाया है कि समाजवाद कितना मूल्यवान और जरूरी फलसफा है। बेरोजगारी,गरीबी,भुखमरी,
कुपोषण और पर्यावरण विनाश के मुहाने पर खड़े भारत और दुनिया को समाजवाद से ही बचाया जा सकता है।पूँजीवादी धनतंत्र तो कोरोना जैसी महामारी के समय भी लूटने से नहीं चुकता।

ऐतिहासिक संदर्भों में देखें तो भारत को मिली स्वतंत्रता के बाद प्रधानमंत्री नेहरू समाजवाद और पूँजीवाद;दोनों को जोड़कर एक मध्यमार्गी राजनीति कर रहे थे।बावजूद इसके 1956 में कांग्रेस पार्टी ने समाजवादी

समाज को अपना लक्ष्य घोषित किया।दरअसल नेहरू का अपना समाजवादी माडल था जिसमें समता और न्याय जैसे मूल्यों के साथ साथ पश्चिमी आधुनिकीकरण की संगति थी।नेहरू की

नेहरू का अपना समाजवादी माडल था जिसमें समता और न्याय जैसे मूल्यों के साथ साथ पश्चिमी आधुनिकीकरण की संगति थी।

राजनीतिक वारिस इंदिरा गाँधी ने जब देश की बागडोर संभाली तो उन्होंने सभी बड़े बैंकों और कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण कर दिया।पूर्व महाराजाओं का 'प्रीवी पर्स' खत्म कर दिया। समाजवादी समाज बनाने की दिशा में ये बड़े कदम थे।लेकिन जिस लोकतंत्र को नेहरू ने संवारा था,उस पर बड़ा हमला करते हुए इंदिरा गांधी ने 25 जून 1975 को आपातकाल लागू कर दिया। इसके पीछे समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण का संपूर्ण क्रांति आंदोलन था।छात्रों और नौजवानों से शुरू हुआ यह आंदोलन इंदिरा के तानाशाही रवैए के खिलाफ एक राजनीतिक आंदोलन बन गया।

आपातकाल लागू करने के बाद इंदिरा गांधी ने कई बड़े परिवर्तन किए।1976 में 42वें संशोधन के द्वारा संविधान की प्रस्तावना में तीन शब्द जोड़े गये-समाजवादी,पंथनिरपेक्ष और अखंडता।संभव है कि समाजवादी आंदोलन को प्रभावहीन करने के लिए इंदिरा गांधी ने 'समाजवादी' शब्द जोड़ा हो।हालांकि इससे जाहिर होता है कि समाजवादी विचार की कितनी प्रासंगिकता है।

इतना ही नहीं जनता पार्टी के टूटने के बाद जब 1980 में आज की सत्ताधारी भारतीय जनता पार्टी की स्थापना हुई तो उसने 'गाँधीवादी समाजवाद' को अपना लक्ष्य घोषित किया।यह दीगर बात है कि भाजपा ने आने सिद्धान्त का कब और कितना पालन किया। लेकिन पिछले कुछ सालों में और वर्तमान में आदित्यनाथ और राकेश सिन्हा के बयानों से पता चलता है कि भाजपा का समाजवाद के प्रति क्या रवैया है।

2014 में बनी मोदी सरकार ने अपने पहले गणतंत्र दिवस(26जनवरी 2015) पर जो संविधान की प्रस्तावना का पाठ समाचार पत्रों में जारी किया, उनमें समाजवादी शब्द गायब था।दरअसल, भाजपा का कहना था कि उसने मूल संविधान की प्रस्तावना को जारी किया है। जाहिर है कि यह भाजपा का सुनियोजित तरीके से समाजवाद पर हमला था। 2017 में एक अन्य भाजपा नेता द्वारा कहा गया कि समाजवादी शब्द को प्रस्तावना से हटा देना चाहिए । आज पूर्ण बहुमत वाली भाजपा, नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सत्ता में है। इस सरकार का पूँजीवाद को खुला समर्थन होने के बावजूद संविधान से समाजवादी शब्द को निकालना लगभग नामुमकिन है। केशवानंद भारती मामले (1973) में सुप्रीम कोर्ट ने प्रस्तावना को संविधान का मूल ढांचा माना है और यह भी कहा है कि मूल ढांचे में बदलाव का अधिकार संसद को भी नही है।

संविधान और कानून के पहलुओं के बीच एक सवाल यह भी है कि एक ध्रुवीय दुनिया होने के बाद क्या सचमुच विचार के स्तर भी समाजवाद की जरूरत नहीं रह गयी है। समाजवादी चिंतक अरुण कुमार त्रिपाठी कहते हैं कि," समाजवाद का एक आकर्षक अतीत रहा है और अभी भी जब पूंजीवाद गंभीर संकट में होता है, तो कुछ खुसुर-फुसुर के बीच दूर भविष्य में कहीं समाजवाद की उम्मीद दिखाई पड़ने लगती है।" इस बात का एक सबसे जरूरी उदाहरण अभी हमारे सामने है। कोरोना जैसी महामारी से आज दुनिया जूझ रही है।इस समय सबसे ज्यादा हलकान इटली जैसे पूँजीवादी देश की मदद करने के लिए क्यूबा जैसे सोशलिस्ट देश ने आगे आकर अपने डाक्टरों को मदद के लिए

2014 में बनी मोदी सरकार ने अपने पहले गणतंत्र दिवस (26 जनवरी 2015) पर जो संविधान की प्रस्तावना का पाठ समाचार पत्रों में जारी किया, उनमें समाजवादी शब्द गायब था। ...... जाहिर है कि यह भाजपा का सुनियोजित तरीके से समाजवाद पर हमला था।

भेजा है। इस बीच लैटिन अमेरिका जैसे दुनिया के कुछ हिस्सों में समाजवाद का मॉडल प्रासंगिक भी हुआ है। भारत जैसे बहुलतावादी समाज के लिए जितनी जरूरत धर्मनिरपेक्षता की है उतनी ही समाजवाद की।

भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को आखिर समाजवाद से इतना डर क्यों है? इसके इतिहास की पड़ताल करना जरूरी है।संविधान के जानकारों और राजनीतिक इतिहासकारों का मानना है कि समाजवादी शब्द औपचारिक रूप से भले ही 1976 में संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा गया हो लेकिन आजादी के आंदोलन और संविधान की मूल भावना में यह पहले से ही शामिल रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पहले पहल राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में गदर पार्टी(1913, अमेरिका) के विचारों पर समाजवाद का प्रभाव दिखाई देता है।इसके बाद क्रांतिकारी आंदोलन की मुख्य वैचारिकी समाजवाद ही है। भगत सिंह को सर्वाधिक समझदार,विवेकसंपन्न और चिंतनशील क्रांतिकारी माना जाता है। चंद्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन संगठन में समाजवादी शब्द को भगत सिंह के आग्रह पर ही शामिल किया गया था।

1928 में दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में निर्मित हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन के सभी क्रांतिकारियों ने भारत को समाजवादी राष्ट्र बनाने का संकल्प किया था। इसमें कोई दोराय नहीं कि भगतसिंह,भगवती चरण वोहरा,दुर्गा भाभी,यशपाल और शिववर्मा आदि क्रांतिकारियों पर 1917 में हुई सोवियत क्रांति का प्रभाव था। मार्क्स-एंगेल्स और लेनिन के साहित्य को भगतसिंह और उनके साथी बड़े चाव से पढ़ते थे। कहते हैं कि फांसी लगने के ठीक पहले भगतसिंह लेनिन की जीवनी पढ़ रहे थे। क्या भगतसिंह जैसे नौजवान क्रांतिकारियों के विचार और उनके सिद्धांत हमें नहीं चाहिए? आज का भारत किस मुकाम पर आकर खड़ा हो गया है, जहां सत्ताधारी और उसके समर्थक भगतसिंह की शहादत को तो पसंद करते हैं लेकिन उनके विचारों को नहीं क्योंकि उनके विचारों में आजादी का मतलब जनमुक्ति है। इसका

मतलब है कि लाखों-करोड़ों किसानों, मजदूरों, स्त्रियों, दलितों और आदिवासियों की मुक्ति ही देश की असली आजादी है।

कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाला स्वाधीनता आंदोलन मूलतः साम्राज्यवाद से मुक्ति का आंदोलन था। कांग्रेसी आंदोलन की धारा के समानांतर अन्य धाराएं भी चल रही थीं जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ-साथ देशी पूँजीवाद और सामंतवाद से भी मुक्ति की मांग कर रही थीं। क्रांतिकारी आंदोलन का यही मुख्य स्वर था। भगत सिंह स्पष्ट तौर पर कह रहे थे कि गोरे अंग्रेज चले जाएंगे तो भारत मे काले अंग्रेज राज करेंगे। वे पूछते हैं कि क्या फर्क पड़ेगा अगर लार्ड इरविन की जगह सर तेज बहादुर सप्रू बैठ जाएंगे। इसलिए राजनीतिक आजादी के साथ साथ आर्थिक और सामाजिक मुक्ति भी जरूरी है।जेल से एक खत में उन्होंने लिखा था कि," किसानों को सिर्फ विदेशी शोषकों से ही मुक्ति नहीं पानी है बल्कि उन्हें जमीदारों और पूंजीपतियों के चंगुल से भी आजाद होना है।" 3 मार्च 1931 के अपने अंतिम संदेश में भगत सिंह ने घोषणा की थी कि,"भारत में संघर्ष तब तक चलता रहेगा ,जब तक मुट्ठी भर शोषक अपने लाभ के लिए आम जनता के श्रम का शोषण करते रहेंगे।इसका कोई खास महत्व नहीं कि शोषक अंग्रेज पूँजीपति हैं या अंग्रेज और भारतीयों का गठबंधन है या पूरी तरह भारतीय हैं।" यह है भगत सिंह का समाजवाद; जो पूरी तरह से भारतीय परिस्थितियों के अध्ययन और विश्लेषण की उपज है।

डॉ भीमराव आंबेडकर एक कदम आगे बढ़कर यह मांग कर रहे थे कि राजनीतिक आजादी से पहले हज़ारों सालों के ब्राह्मणवाद से दलितों-अछूतों-शूद्रों और स्त्रियों को मुक्ति चाहिए। वे कहते हैं कि शूद्रों-स्त्रियों की मुक्ति के बिना राजनीतिक आजादी बेमानी है।हालांकि देश की आजादी के समय सारे प्रश्न हल नहीं हो सके।ऐसा माना गया कि संविधान और लोकतंत्र की प्रक्रियाओं के माध्यम से इन प्रश्नों को हल कर लिया जाएगा।लेकिन हम जानते हैं कि देश की आजादी के बाद

आज का भारत किस मुकाम पर आकर खड़ा हो गया है, जहां सत्ताधारी और उसके समर्थक भगतसिंह की शहादत को तो पसंद करते हैं लेकिन उनके विचारों को नहीं

सामाजिक और आर्थिक आजादी के प्रश्न अभी भी जिंदा हैं। क्या भाजपा-संघ दलितों-पिछडों-स्त्रियों-आदिवासियों की स्वतंत्रता की भावना के विरोधी हैं ? क्या संघ-भाजपा वंचित तबकों के शोषण और दमन से मुक्ति नहीं चाहते ? दरअसल भाजपा और संघ में घोषित तौर पर ऐसा कहने का साहस नहीं है। इसलिए ये संगठन समाजवाद शब्द को ही खारिज करना चाहते हैं।

1915 में अफ्रीका से वापस आने के बाद महात्मा गांधी ने कांग्रेस के आंदोलन को जन आंदोलन बनाया। कांग्रेस के भीतर सभी वर्ग और समुदाय के लोग थे। आरम्भ में कांग्रेस का लक्ष्य ब्रिटिश भारत में कुछ सहूलियतें हासिल करना और राजनीतिक भागीदारी प्राप्त करना था । गांधी और क्रांतिकारी आंदोलन के प्रभाव तथा डॉ आंबेडकर के दलित आंदोलन के दबाव में कांग्रेस ने अपना वर्गीय चरित्र तो बदला ही,अपने लक्ष्य और सिद्धान्तों में भी परिवर्तन किया। मसलन 23 मार्च 1931 को भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु की फांसी के बाद हुए कराची कांग्रेस अधिवेशन (1931) में जो प्रस्ताव पारित किये गए, उनका मुख्य स्वर समाजवादी था।उल्लेखनीय है कि इसमें मजदूरों के पारिश्रमिक और अन्य शर्तों से जुड़ा हुआ एक प्रस्ताव पारित किया गया। इससे लगता है कि कांग्रेस के भीतर जमींदारों,राजा- महाराजों और उच्च वर्गीय भद्रजनों के रहते हुए भी समाजवादी चरित्र उभर रहा था। इसकी एक बानगी सीधे तौर पर 1934 में दिखती है जब आचार्य नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण और राममनोहर लोहिया ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनाई। कांग्रेस के भीतर रहकर समाजवादी नेता और विचारक आजादी के आंदोलन को अधिक सृजनात्मक और जनआकांक्षी बना रहे थे। उन्होंने आजादी के लक्ष्य को अधिक मूल्यधर्मी, मानवीय तथा समावेशी बनाया। समाजवादी नेताओं ने कांग्रेस के भीतर किसानों, मजदूरों, दलितों, आदिवासियों और स्त्रियों की आजादी के प्रश्नों को मुखर किया।

आजादी की लड़ाई के समय चल रहे अनेक समानांतर जन आंदोलनों और विचारधाराओं का असली परीक्षण आजादी के बाद होना था। अंग्रेजों ने जब भारत को आजाद करने का निर्णय लिया तो तमाम भारतीय नेतृत्वकर्ता इस बात को लेकर मुत्मइन थे कि वे एक बेहतर राष्ट्र बनाने जा रहे हैं। इसका कारण भी था।आजादी के संघर्ष के दौरान उभरता हुआ राष्ट्रवाद ना सिर्फ साम्राज्यवाद के खिलाफ था बल्कि भीतरी अनेक दमनकारी शक्तियों की भी आलोचना कर रहा था। भारतीय राष्ट्रवाद धर्म और जाति से ऊपर उठकर एक तरह से समाजवादी रूप ले रहा था। लेकिन वास्तव में तमाम यथा स्थितिवादी और रूढ़िवादी शक्तियों से मुकाबला करने का समय आजादी मिलने के समय आया। कैबिनेट मिशन (1946) के प्रस्ताव के आधार पर भारत में एक संविधान सभा की स्थापना हुई। साम्राज्यवाद से मुक्ति के बाद दूसरी चुनौतियों से जूझने का माध्यम अब संविधान सभा बन गई। संविधान सभा को अधिक समावेशी बनाने के लिए डॉ भीमराव आम्बेडकर जैसे कानूनविद और आंदोलनधर्मी व्यक्तित्व को आमंत्रित किया गया।

संविधान का मसौदा तैयार की सारी जिम्मेदारी आंबेडकर के हांथों में सुपुर्द कर दी गई। करीब तीन साल की लंबी अवधि के दौरान, दुनिया का सबसे विस्तृत माना जाने वाला भारतीय संविधान बनकर तैयार हुआ। संविधान पर टिप्पणी करते हुए ग्रेनविल आस्टिन अपनी चर्चित किताब, 'भारतीय संविधान: राष्ट्र की आधारशिला' की भूमिका में लिखते हैं कि," संविधान पर एक साथ कई उद्देश्यों को पूरा करने की जिम्मेदारी थी।इनमें सबसे महत् उद्देश्य सामाजिक क्रांति का था। इस क्रांति का लक्ष्य जन-साधारण की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। सदस्य आशा करते थे कि यह क्रांति भारत की सुदीर्घ और वैभवशाली सांस्कृतिक परंपरा वाले लेकिन वर्तमान में अभावों से ग्रस्त समाज में ऊर्जा और राष्ट्रवाद का सामंजस्य करके बुनियादी

आजादी के संघर्ष के दौरान उभरता हुआ राष्ट्रवाद ना सिर्फ साम्राज्यवाद के खिलाफ था बल्कि भीतरी अनेक दमनकारी शक्तियों की भी आलोचना कर रहा था। भारतीय राष्ट्रवाद धर्म और जाति से ऊपर उठकर एक तरह से समाजवादी रूप ले रहा था।

परिवर्तनों का मार्ग प्रशस्त करेगी।सामाजिक क्रांति का यह प्रसंग सभा की कार्यवाहियों और दस्तावेजों में निरंतर विद्यमान रहता है।संसदीय सरकार और प्रत्यक्ष चुनाव ,मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक सिद्धान्तों ;यहाँ तक कि संविधान के कार्यपालिका ,विधायिका और न्यायपालिका से संबंधित कतिपय प्रावधानों के पीछे भी सामाजिक क्रांति का विचार ही आधार की तरह काम कर रहा था।" इस विचार को साकार करने के लिए विविध पश्चिमी माडलों की विशिष्ट प्रणालियों का मिश्रण तैयार किया गया।सभा में मौजूद भारतीय अभिजनों ने लोकतंत्र जैसे राजनीतिक माडल को अपनाया था।निस्संदेह भारतीय समाज के लिहाज से यह एक साहसिक कदम था।

समाजशास्त्री योगेन्द्र यादव के अनुसार," उनके समक्ष एक ऐसा महाकाय समाज था जिसके पास राजनीतिक लोकतंत्र की कोई ऐतिहासिक मिसाल नहीं थी।फिर भी उन्होंने इस रास्ते को चुना और एक संवैधानिक ,प्रातिनिधिक-लोकतांत्रिक गणराज्य की शासन-प्रणाली अपने लिए स्वीकार की।लोकतंत्र अपनाने का अर्थ था,गहरी समतामूलक आकांक्षाओं को अंगीकार करना और स्वराज के सपने को जन्म देना।" सार्वभौमिक मताधिकार के द्वारा सभा ने तय कर दिया था कि राजनीतिक रूप से भारत की जनता समान है।संविधान स्वीकृत होने के एक दिन पहले 25 नवंबर 1949 को डा.आंबेडकर ने इस संदर्भ में कहा था कि इसके बाद भारत में राजनीतिक रूप से सभी समान होने जा रहे हैं।अब हमारे सामने चुनौती है सामाजिक और आर्थिक असमानता की।सामाजिक और आर्थिक समानता संवैधानिक मूल्यों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से स्थापित हो सकेगी। क्या यह समानता स्थापित हो गई है? अगर नहीं,तो समाजवादी शब्द गैर जरूरी या अप्रासंगिक कैसे हो गया?

ग्रेनविल आस्टिन भारतीय संविधान को 'मूलतः एक सामाजिक दस्तावेज' मानते हैं।

सामाजिक क्रांति के संकल्प के मूल तत्व संविधान के भाग तीन (मूल अधिकार) और भाग चार (नीति निर्देशक तत्व) में समाहित हैं।अपवादों को छोड़कर संविधान सभा के अधिकांश सदस्य समाजवादी मूल्यों के कायल थे।भले ही संविधान सभा में कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट पार्टियाँ शामिल नहीं हुईं लेकिन यह राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव था कि सभा के सदस्यों को 'समाजवाद सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए रोजमर्रा की राजनीति लगता था।' संविधान सभा के सभी सदस्य कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के 1947 में पारित उस प्रस्ताव से सहमत थे कि 'लोकतंत्र के बिना समाजवाद की कल्पना नहीं की जा सकती'।2008 में

आंबेडकर ने कहा कि नीति निर्णय जैसे मामले संविधान में दर्ज नहीं करके इन्हें आने वाली पीढ़ियों पर छोड़ देना चाहिए।लेकिन सच तो यह है कि मूल संविधान के कई हिस्सों में समाजवादी सिद्धांतों का प्रावधान किया गया है।

जस्टिस के.जी. बालाकृष्णन की अध्यक्षता वाली तीन सदस्यीय पीठ ने अपने निर्णय में

कहा था कि लोकतंत्र और समाजवाद में चोली दामन का रिश्ता है।अब सवाल यह उठता है कि महात्मा गाँधी के राजनीतिक शिष्य जवाहरलाल नेहरू के रहते हुए संविधान में समाजवादी शब्द क्यों नहीं जोड़ा गया।नेहरू सदन में लगभग सर्वमान्य नेता ही नहीं थे बल्कि समाजवादी विचारधारा के समर्थक भी माने जाते थे। इस मुद्दे पर संविधान सभा में के.टी.शाह और डा.आंबेडकर के बीच बहस भी हुई।के.टी.शाह चाहते थे कि संविधान की प्रस्तावना में संघीय,धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी जैसे शब्द रखे जाएं।उनका जवाब देते हुए आंबेडकर ने कहा कि नीति निर्णय जैसे मामले संविधान में दर्ज नहीं करके इन्हें आने वाली पीढ़ियों पर छोड़ देना चाहिए।लेकिन सच तो यह है कि मूल संविधान के कई हिस्सों में समाजवादी सिद्धांतों का प्रावधान किया गया है।

आजादी के समय जवाहरलाल नेहरू के सामने सांप्रदायिकता सबसे बड़ी चुनौती थी।देश के विभाजन के कारण हिन्दू-सिख और मुसलमानों में तनाव था। हिन्दुत्ववादी शक्तियाँ इसका फायदा उठाना चाहती थीं।ये शक्तियाँ उन्माद पैदा करके लोगों को हिंसा के लिए उकसा रही थीं।इसी बीच सांप्रदायिक सद्भाव के प्रतीक बने महात्मा गाँधी की हत्या कर दी गई।इससे हिन्दुत्व पर सवाल उठने लगे।देश का माहौल हिन्दुत्ववादियों के खिलाफ बन गया।प्रसिद्ध समाजशास्त्री आशिस नंदी कहते हैं कि गाँधी की हत्या नहीं बल्कि इच्छामृत्यु थी।गाँधी ने खुद को शहीद करके देश को बचा लिया था।सांप्रदायिक शक्तियाँ कमजोर हुईं।फिलहाल थम गई विध्वंसक प्रवृति से मुकाबला करने के लिए, इस दौर में एक नए सेकुलरवाद का उभार हुआ।

इसके बारे में समाजशास्त्री धीरूभाई सेठ कहते हैं कि, "आजादी के पहले सेकुलरवाद की अभिव्यक्तियाँ विविधतामूलक और बहुसांस्कृतिक जमीन से आती थीं। आजादी मिलने के बाद नेहरू और गाँधी की साझी सेकुलर परंपरा में विच्छेद हो गया।नेहरू के नाम से जो सेकुलर विचार बना,उस पर विकास और आधुनिकीकरण के साथ साथ पाकिस्तान के निर्माण के बाद मुसलमानों की असुरक्षाओं का प्रश्न उस पर हावी होता चला गया।इन सब परिस्थितियों में ऊँची जाति के अंग्रेजी पढ़े लिखे अभिजनों ने आधुनिकता और सेकुलरवाद पर अपनी इजारेदारी कायम कर ली।"

समाजवादी चिंतक और राजनेता राममनोहर लोहिया ने गाँधी की तरह बहुलतावादी सांस्कृतिक मूल्यों द्वारा सांप्रदायिकता का मुकाबला करने का प्रयास किया। गाँधी के 'कुजात शिष्य' लोहिया घोषित रूप से नास्तिक थे लेकिन रामायण मेला लगाते थे।लोहिया अपने भाषणों में अक्सर मिथकों का प्रयोग करते थे,लेकिन बिल्कुल नए संदर्भों में।मसलन,द्रौपदी के बुद्धि, विवेक और साहस की प्रशंसा करते हुए लोहिया आजाद नारी के रूप में उसे आदर्श बताते थे।अशिक्षित जनमानस को ऐसे प्रतिमानों के माध्यम से लोहिया विवेकसंपन्न और धर्म के प्रति सहिष्णु बनाते थे।यह भी

गौरतलब है कि नब्बे के दशक में जब एक बार फिर से सांप्रदायिकता का उभार शुरू हुआ तो उसका डटकर मुकाबला लोहिया के चेलों ने ही किया था। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव की सरकार ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद की तरफ बढ़ रही उन्मादी भीड़ को काबू में किया था तो लालकृष्ण आडवाणी के रथ को बिहार में जेपी आंदोलन से निकले लालू प्रसाद यादव ने रोका था।

आजादी के समय राष्ट्र निर्माण का दायित्व नेहरू के हाथों में था।लोकतंत्र को मजबूत बनाने के लिए नेहरू ने तमाम संस्थाओं का निर्माण किया।नेहरू मानते थे कि लोकतंत्र समाजवाद के बिना और समाजवाद लोकतंत्र के बिना नहीं चल सकता।लेकिन ऐसा लगता है कि उन्होंने व्यावहारिक राजनीति के दबाव में समाजवाद से समझौता कर लिया था।इसकी आलोचना सोशलिस्टों और कम्युनिस्टों ने की।गरीब भारत के प्रधानमंत्री नेहरू के शाही अंदाज की तीखी आलोचना लोहिया ने की।भव्य शेरवानी पर लगे गुलाब वाले लिबास में नेहरू की तुलना लोहिया मुगल दरबार के तबलचियों से करते थे।नए भारत में स्थापित बड़े उद्योग धंधों और भारी मशीनों की आलोचना करते हुए लोहिया गाँधी के सपने को साकार करने हेतु कुटीर उद्योगों की वकालत करते थे।साथ ही वे चौखंभा राज की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। लोहिया सत्ता का विकेन्द्रीकरण करके जनतंत्र को मजबूत करना चाहते थे।उन्होंने एक

सकारात्मक और रचनात्मक विपक्ष की भूमिका निभाई।

लोहिया के समाजवाद पर टिप्पणी करते हुए मस्तराम कपूर लिखते हैं," लोहिया का समाजवाद सिर्फ आर्थिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है,न वह यह मानता है कि अर्थ ही मानव अस्तित्व की धुरी है।उनके अनुसार यह मूलतः एक नैतिक व्यवस्था है,जिसकी अभिव्यक्ति जीवन के सभी पहलुओं में बराबर ताकत के साथ होनी चाहिए।यह अकारण नहीं है कि राजनीति और अर्थशास्त्र के साथ-साथ कला और साहित्य में भी लोहिया का आना-जाना बना रहता था।सत्य और सौंदर्य दोनों उन्हें आकर्षित करते थे।" लोहिया नेहरू सरकार की तार्किक आलोचना तो करते ही थे, समाजवादी भारत को बनाने के लिए तरीके और नीतियाँ भी सुझाते थे।

लोहिया का समाजवाद सिर्फ आर्थिक व्यवस्था तक सीमित नहीं है,न वह यह मानता है कि अर्थ ही मानव अस्तित्व की धुरी है।

लोहिया का उद्देश्य था कि भारत में स्त्री पुरुष समता स्थापित हो और जातिबंधन ध्वस्त हो।साठ के दशक में उन्होंने पिछड़ों के आरक्षण की माँग करते हुए नारा दिया था- "संसोपा ने बांधी गाँठ,पिछड़े पावें सौ में साठ"।बाद के समाजवादियों द्वारा भी यह माँग उठाई जाती रही। जनता पार्टी सरकार ने 1979 में बी.पी.मंडल की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया।लेकिन लंबे समय तक आयोग की रिपोर्ट धूल फांकती रही।

90 के दशक में लोहियावादियों और पिछड़ी जाति से आने वाले नेताओं ने मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू करने के लिए आंदोलन चलाया। लोहिया के 'पिछड़े पावें सौ में साठ' के नारे को अधिक तर्कसंगत बनाकर बहुजन राजनीति के नायक कांशीराम ने नया नारा दिया-"जिसकी जितनी संख्या भारी,उसकी उतनी हिस्सेदारी"।इसी समय ' सामाजिक न्याय' शब्द अधिक लोकप्रिय बना।लेकिन हिन्दुत्ववादी शक्तियों ने सामाजिक न्याय की अवधारणा और उसके प्रावधान आरक्षण को कभी मन से स्वीकार नहीं किया।यही कारण है कि मंडल आंदोलन के बरक्स कमंडल की उग्र राजनीति शुरू हुई। समता और न्याय स्थापित करने वाले आरक्षण के खिलाफ आज भी भाजपा और संघ है।अटल बिहारी बाजपेयी,मोहन भागवत से लेकर न जाने कितने भाजपा संघ के नेता हैं जो गाहे ब गाहे संविधान और आरक्षण के खिलाफ बयान देते रहे हैं। पिछले तीन दशकों में दलितों और पिछड़ों का कमोबेश सशक्तीकरण हुआ है। नतीजतन सांप्रदायिकता से सामाजिक न्याय को दफनाने की कोशिश हो रही है।संविधान में दर्ज समाजवादी शब्द हटाने की मुहिम के पीछे आरक्षण को समाप्त करने की साजिश है।ताकि पिछड़ी जातियों को कमजोर किया जा सके। हिन्दूराष्ट्र के लिए यह जरूरी है क्योंकि उसमें शूद्र सिर्फ सेवक हो सकता है!

(यह लेखक के अपने विचार हैं)

समाजवाद को न मानने वाले संविधान नहीं जानते

- नंदा

*समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री **किरणमय नंदा** बीते करीब छह दशक से सक्रिय राजनीति में हैं। मूल रूप से पश्चिम बंगाल से ताल्लुक रखनेवाले श्री नंदा वहां तीन दशक से भी ज्यादा समय तक वाम मोर्चा सरकार में मंत्री रहे। समाजवादी पार्टी के संस्थापक सदस्यों में से एक श्री नंदा उत्तर प्रदेश की सियासत की भी गहरी समझ रखते हैं। पेश हैं मौजूदा राजनीतिक माहौल पर वरिष्ठ पत्रकार **रंजीव** से उनकी बातचीत:*

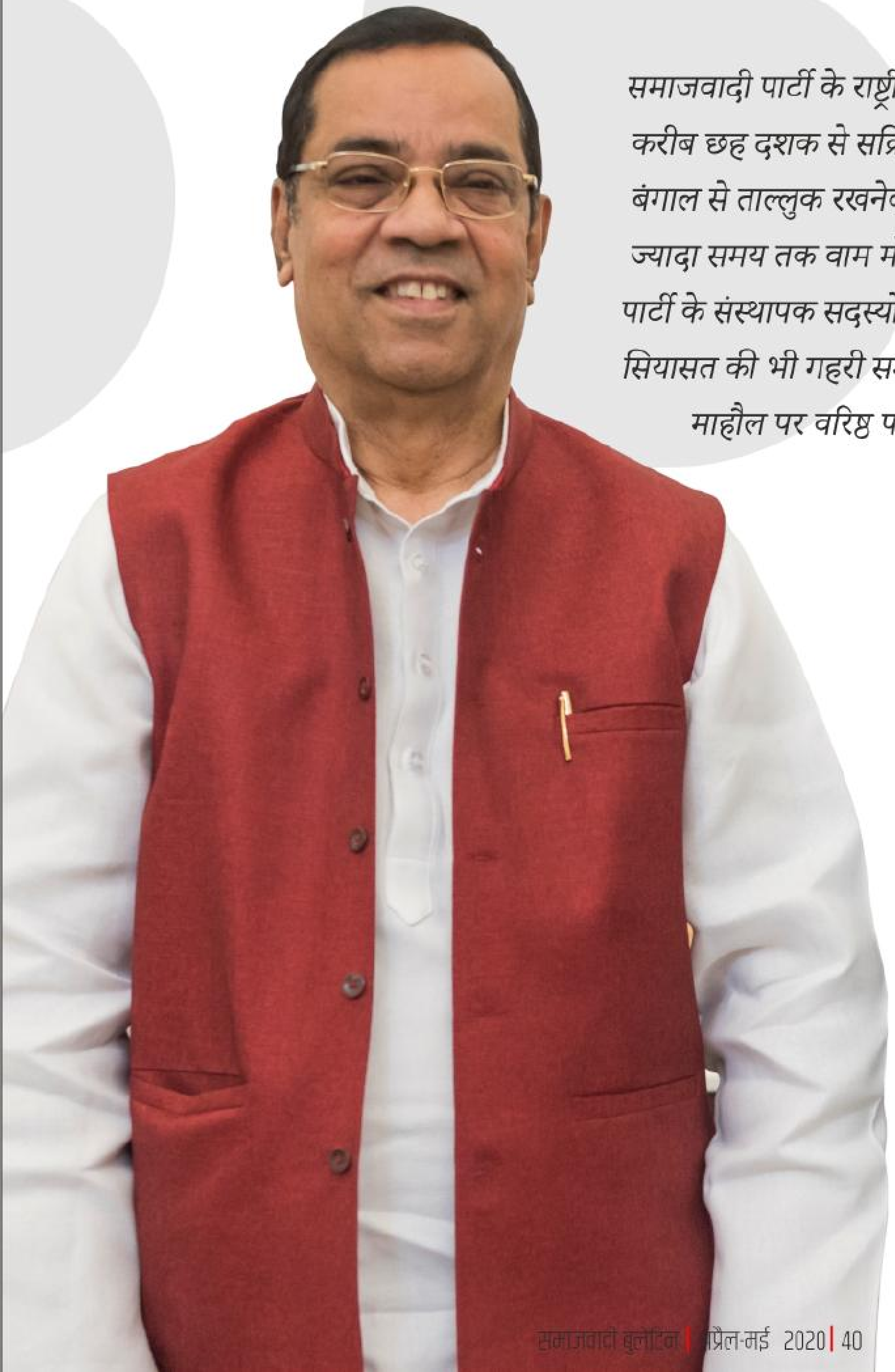

आनेवाले समय में समाजवादी आंदोलन की क्या भूमिका देखते हैं?

मैं 1967 से समाजवादी राजनीति में हूं। डा. राम मनोहर लोहिया जब पश्चिम बंगाल में आए थे तब झाड़ग्राम में वनवासी पंचायत में उनका भाषण सुना। उनसे प्रभावित होकर संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गया। 1992 में नेताजी मुलायम सिंह यादव ने समाजवादी पार्टी बनाई तब से सपा में हूं। आज जो भारत के हालात हैं उसमें डा. लोहिया के रास्ते पर ही चलना होगा। इसलए

सपा की अहम भूमिका है। जब नेताजी अध्यक्ष थे तब लगातार कहते थे, लोकसभा के भाषणों में भी कहा, कि चीन से ज्यादा खतरा है। आज कोरोना का अनुभव यही साबित भी करता है कि कैसे चीन बड़ा खतरा है। आज भारत में लोकतंत्र के नाम पर देश में तानाशाही चल रही है। सरकारी कामकाज में समाजवादी मूल्यों का और गरीब का कोई स्थान नहीं। ऐसे में समाजवादी आंदोलन की आज पहले से कहीं ज्यादा भूमिका है।

राष्ट्रीय स्तर पर समाजवादी पार्टी के प्रसार की क्या रणनीति है?

देखिए किसी भी राजनीतिक पार्टी में नेतृत्व बहुत अहमियत रखता है। यह सही है कि आज समाजवादी पार्टी की राष्ट्रीय उपस्थिति नहीं है। भविष्य को देखेगें तो सपा का बहुत उज्जवल भविष्य है। हमारे पास समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अखिलेश यादव जी के रूप में शानदार नेतृत्व है। उनकी जो सोच है, उनकी जो छवि है और जनता पर उनका जो प्रभाव है, उनपर जनता ता जो भरोसा है वह साबित करता है कि उनकी उम्र का किसी भी पार्टी में कोई नेता नहीं है जिनका इतना प्रभाव और सम्मान है। लिहाजा मेरा विश्वास है कि आनेवाले दिनों में समाजवादी पार्टी पूरे भारत में एक मजबूत पार्टी के रूप में उभरेगी।

हाल के दिनों में कुछ राजनीतिक दल व उससे जुड़े राजनीतिक नेता समाजवाद शब्द पर सवाल उठा रहे हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री भी इनमें शामिल हैं। क्या कहेंगे इसपर?

ऐसे लोगों को देश के संविधान की ही जानकारी नहीं है। योगी आदित्यनाथ जी मुख्यमंत्री जैसे संवैधानिक पद पर बैठे हैं लेकिन समाजवाद को ही खारिज कर रहे।

क्या उन्हें संविधान की जानकारी नहीं या उसकी परवाह नहीं? भारत के संविधान की प्रस्तावना में ही समाजवाद शब्द है। ऐसे में जो यह कहतें हैं कि समाजवाद की प्रासंगिकता नहीं उन्हें संविधान की कोई जानकारी ही नहीं है। कोई तानाशाह ही कह सकता है कि समाजवाद का कोई अस्तित्व ही नहीं है। बिना समाजवाद के कोई लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता है। जो समाजवाद को नकारेंगे, उनकी लोकतंत्र में कोई आस्था नहीं हो सकती। उत्तर प्रदेश में क्या हो रहा है? जब से योगी जी मुख्यमंत्री बनें हैं, विकास का कोई काम तो हो नहीं रहा। जब 2012 में अखिलेश जी मुख्यमंत्री बने थे तो उत्तर प्रदेश विकास की राह पर चल पड़ा था। पांच साल में जो विकास कार्य हुए वैसा पहले कभी नहीं हुआ। उत्तर प्रदेश के विकास से भारत का विकास होता है। यूपी पीछे रह जाएगा तो भारत पीछे रह जाएगा। उत्तर प्रदेश का जीडीपी बढ़ेगा तो देश का भी बढ़ेगा। भारत की जीडीपी दर इसलिए घटी हुई है क्योंकि यूपी का जीडीपी कम है। दुर्भाग्य की बात है कि 2017 के बाद यूपी का विकास ठप हो गया है। सपा की सरकार में हुए विकास कार्यों के दम पर ही मौजूदा सरकार चल रही है।

"जब 2012 में अखिलेश जी मुख्यमंत्री बने थे तो उत्तर प्रदेश विकास की राह पर चल पड़ा था। पांच साल में जो विकास कार्य हुए वैसा पहले कभी नहीं हुआ।

कोरोना से उपजे हालातों के मद्देनजर आनेवाले समय में राजनीतिक परिदृश्य में क्या बदलाव देखते हैं?

बेहद अफसोस की बात है कि आज कोरोना को लेकर भी राजनीति चल रही है। कोरोना को भी सांप्रदायिक रूप देने की कोशिश की जा रही है। भारत में जब अहमदाबाद में नमस्ते ट्रंप कार्यक्रम में भीड़ जुटाई जा रही थी तब तक अमेरिका में कोरोना फैल चुका था। भारत में केवल केरल में इक्का-दुक्का मामले आए थे। ट्रंप के साथ अमेरिका से उतने सारे जो लोग आए थे उनकी कोई जांच तो हुई नहीं थी कि कहीं वे कोरोना से संक्रमित तो नहीं थे। उसकी बात तो नहीं की जा रही है? सिर्फ दिल्ली में निजामुद्दीन के वाकए से जो कोरोना के मामले बढ़े उसकी तरफ ही उंगली उठाई जा रही है। निजामुद्दीन में हुए कार्यक्रम में बड़ी संख्या में विदेशी भी शामिल थे। उन्हें भारत में आने का वीजा किसने दिया था? केन्द्र सरकार ही वीजा देती है न। तो उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं? आज कोरोना से अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो गई है। प्रवासी मजदूरों को किस हाल में अपने घरों को लौटना पड़ा रहा है वह हम रोजाना देख रहे हैं। इन विषम हालातों को ठीक करने का दायित्व केन्द्र सरकार का है लेकिन उसके पास भाषणों के अलावा कोई रोड मैप ही

नहीं है। लोगों के लिए रोटी-कपड़ा-मकान का बंदोबस्त से उसे करना है लेकिन गरीबों का कल्याण कैसे करना है इसकी कोई कार्ययोजना उसके पास नहीं है। यह बेहद चिंताजनक बात है।

कोरोना से निपटने के सरकारी तौर-तरीकों पर क्या कहेंगे?

इतनी बड़ी महामारी फैली है पर सरकार कुछ ठोस करने की जगह सिर्फ प्रयोग कर रही है। भारत में कोरोना संक्रमित लोगों की संख्या एक लाख पार कर चुकी है। इसकी रोकथाम कैसे करेंगे इसपर शुरू में ही गंभीरता दिखाने के बजाए सरकार ने थाली-घंटा बजवाने और उसके बाद दीया जलवाने पर ही सारा जोर लगाया था। उस सबसे कोरोना का संक्रमण थमा तो नहीं? एक तरफ सरकार सोशल डिस्टेंसिंग की बात कर रही थी वहीं दूसरी तरफ शराब की दुकाने भी खोल दी गईं। परस्परविरोधी तरीकों से सरकार कोरोना पर काबू पाना चाहती है। जो टेस्टिंग किट चीन से मंगवाई गई वे घटिया निकलीं। उनके जांच के नतीजे ही गलत आ रहे थे। जिस कंपनी के जरिए ये किट मंगवाए गए थे क्या उसपर कोई कार्रवाई हुई?

> “
> **भारत में कोरोना संक्रमित लोगों की संख्या एक लाख पार कर चुकी है। इसकी रोकथाम कैसे करेंगे इसपर शुरू में ही गंभीरता दिखाने के बजाए सरकार ने थाली-घंटा बजवाने और उसके बाद दीया जलवाने पर ही सारा जोर लगाया था।**

आप समाजवादी पार्टी से शुरू से ही जुड़े हैं, अखिलेश यादव जी को करीब से देखा है। उनके बारे में क्या कहेंगे?

मैंने तो पश्चिम बंगाल में 1982 में ही पश्चिम बंगाल सोशलिस्ट पार्टी बना ली थी, जब 1992 में नेताजी मुलायम सिंह यादव ने समाजवादी पार्टी बनाई तो पश्चिम बंगाल सोशलिस्ट पार्टी का उसमें विलय हो गया। नेताजी हम सबके नेता पहले भी थे और आज भी हैं। समाजवादी पार्टी को कुछ लोग नुकसान पहुंचाना चाह रहे थे तब हम सबने अखिलेश जी को अपना नेता बनाते हुए अध्यक्ष पद संभालने का आग्रह किया। वे अध्यक्ष बने। डा. लोहिया ने सोशलिस्ट पार्टी बनाई थी लेकिन कभी अध्यक्ष-महासचिव नहीं रहे। जयप्रकाश नारायण ने जनता पार्टी बनाई थी लेकिन कभी अध्यक्ष या महासचिव नहीं रहे। ऐसे ही समाजवादी पार्टी को नेताजी ने बनाया तो वही सबसे बड़े नेता हैं। दलों के अध्यक्ष तो बदलते रह सकते हैं लेकिन नेता कभी नहीं बदलता। तो नेता तो नेताजी हैं लेकिन अखिलेश जी गुणों की खान हैं। भारत के बड़े-बड़े नेताओं से मेरे संबंध हैं लेकिन अखिलेश जी जैसा शिष्टाचारी, इतना सहनशील, इतना अच्छा स्वभाव, सबका सम्मान करना जैसे गुण मैंने किसी और नेता में नहीं देखा। मेरी कई ऐसे लोगों से मुलाकात हुई है जो समाजवादी पार्टी का विरोध भले करते हों लेकिन अखिलेश जी के प्रशंसक हैं। एक

को भी देखा है, नेताजी को भी देखा है। जो उन दोनों में गुण थे वे सब अखिलेश जी में भी हैं।

उत्तर प्रदेश में 2022 में विधानसभा चुनाव होने हैं। अपने लंबे राजनीतिक अनुभव के आधार पर चुनावों को लेकर आपका क्या आकलन है? यह भी बताइए कि चुनाव को लेकर समाजवादी पार्टी की क्या तैयारियां हैं?

समाजवादी पार्टी का लक्ष्य है 2022। जब 2019 के लोकसभा चुनाव हो रहे थे तभी हमलोगों के सामने यह स्पष्ट था कि हमारा

> "
>
> **धर्म के नाम पर लोगों को भरमाकर भाजपा ने सरकार बना ली लेकिन लोग अखिलेश जी के काम को आज भी याद करते हैं।**

लक्ष्य 2019 नहीं, लेकिन चुनाव हमलोगों ने पूरी गंभीरता से लड़ा। हमलोगों का लक्ष्य है 2022 में सपा की फिर से सरकार बनाना। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा सूबा है और यहां सबसे मजबूत पार्टी है सपा। हमारा संगठन बहुत मजबूत है। यूपी में सपा की सरकारें बनीं, नेताजी तीन बार मुख्यमंत्री रहे लेकिन हम सबका एक सपना था कि एकबार सपा की अपने दम की सरकार बने। साल 2012 में प्रदेश की जनता ने सपा को वह अवसर दिया था। अखिलेश जी देश के सबसे युवा मुख्यमंत्री बने और शानदार सरकार भी चलाई। देश व प्रदेश की जनता ने देखा कि कैसे विकास को अपनी एकमात्र प्राथमकिता बनाकर अखिलेश जी ने वैसे-वैसे काम किए जो पहले उत्तर प्रदेश में कभी नहीं हुए। यह अलग बात रही कि कुछ वजहों के कारण व धर्म के नाम पर लोगों को भरमाकर भाजपा ने सरकार बना ली लेकिन लोग अखिलेश जी के काम को आज भी याद करते हैं। जनता 2012 से 2017 तक अखिलेश जी और उसके बाद की सरकार के काम-काज की तुलना कर रही है। जनता यह भी देख रही है कैसे 2017 से चल रही सरकार असंवैधानिक है क्योंकि धर्मनिरपेक्षता पर उसका यकीन नहीं। इस सरकार ने भाईचारे को खत्म किया है। 2022 में हमारे लिए जनता का यही भरोसा सबसे बड़ी ताकत है। हमनें संगठन के स्तर

पर भी तैयारियों को लगातार जारी रखा है। हर पोलिंग बूथ तक मजबूत तैयारियां हैं। मुझे यकीन है कि 2022 में यूपी की जनता अखिलेश जी को फिर से मुख्यमंत्री बनाएगी।

आप पश्चिम बंगाल से हैं। वहां अगले साल विधानसभा के चुनाव भी हैं। वहां समाजवादी पार्टी के विस्तार की कोई योजना है क्या?

पश्चिम बंगाल की राजनीति बाकी जगहों से थोड़ी भिन्न रही है। वहां जाति या धर्म के नाम पर राजनीति का बोलबाला नहीं। 1977 में जब जनता पार्टी का दौर था तब भी पश्चिम बंगाल में विधानसभा चुनाव में वाम मोर्चा की सरकार बनी थी। पश्चिम बंगाल सोशलिस्ट पार्टी भी उस सरकार में शामिल थी। पश्चिम बंगाल में अभी जो राजनीति है वह दो विचारधाराओं में बंटी है। एक भाजपा विरोधी विचारधारा दूसरी तृणमूल कांग्रेस विरोधी विचारधारा। इन दोनों धाराओं के बीच हमें समाजवादी पार्टी को पश्चिम बंगाल में विस्तार देना है और मजबूत करना है। लोकसभा चुनाव में हमनें तृणमूल कांग्रेस का समर्थन किया था। विधानसभा चुनाव के बारे में क्या रणनीति होगी उसपर बैठक कर हम उसे अंतिम रूप देंगे।

#काम बोलता है

समाजवादी सरकार की विश्वस्तरीय अत्याधुनिक आपातकालीन सेवा 'यूपी 100' आज कोरोना के संकटकाल में 'यूपी 112' के रूप में अहम भूमिका निभा रही है।

कोरोना से लड़ाई में
समाजवादी योजनाएं ही सहायक

बुलेटिन ब्यूरो

देशभर में फैले कोरोना वायरस संक्रमण के बीच उत्तर प्रदेश की जनता के लिए समाजवादी सरकार में तत्कालीन मुख्यमंत्री अखिलेश यादव के द्वारा स्थापित की गई तमाम महत्वाकांक्षी योजनाएं वरदान साबित हो रही हैं। बात पुलिस के डॉयल 100 सेवा की हो, स्वास्थ्य के क्षेत्र में 108 और 102 एंबुलेंस सेवा की हो या महिला उत्पीड़न के मामलों की शिकायत के लिए अखिलेश जी की सरकार में स्थापित 1090 सेवा की, ये सभी कोरोना से उपजे हालात से निपटने में उत्तर प्रदेश की जनता के बेहद काम आ रहे हैं।

इतना ही नहीं, समाजवादी सरकारों में ही निर्मित मेडिकल संस्थानों व कॉलेज भी कोरोना के इस दौर में इलाकाई लोगों के इलाज में अहम भूमिका निभा रहे हैं। वस्तुत: कोरोना के इस दौर में समाजवादी सरकार में शुरू योजनाओं से समाज को मिल रहे लाभ ने सपा मुखिया व पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव के उस नारे को फिर स्थापित किया है जिसमें वे बोलते हैं- काम बोलता है!

श्री अखिलेश यादव ने अपने मुख्यमंत्रित्वकाल में दूरदर्शिता का परिचय देते हुए उत्तर प्रदेश को जो सिस्टम देने का काम किया, आज वही सिस्टम कोरोना के खिलाफ यूपी का सबसे बड़ा हथियार साबित हो रहा है। महामारी और परेशानी के इस दौर में डॉयल 100 सेवा कमाल का काम कर रही है। उत्तर प्रदेश की वर्तमान सरकार ने भले ही इस सेवा का नाम बदलकर 112 कर दिया है लेकिन इसकी पूरी की पूरी

परिकल्पना और कार्यपद्धति पिछले सरकार की रणनीति और कार्यशैली पर ही आधारित है। यूपी पुलिस की यह सेवा, आज एक बहुउद्देशीय परियोजना के तौर पर कार्य कर रही है।

आमजन को होने वाली हर परेशानी से लेकर कानून व्यवस्था को संभालने के लिए यह सेवा पुलिस और प्रशासन के लिए सबसे बड़ा हथियार बन कर उभरी है। कोरोना के इस दौर में कई ऐसे वाकए हुए हैं जब लॉकडाउन के दौरान परेशानी में पड़े लोगों ने इस सेवा को फोन किया तो उन्हें राहत पहुंची। इसी तरह से कोरोना के संक्रमित मरीजों व अन्य मरीजों के लिए स्वास्थ्य विभाग की 108 और 102 एंबुलेंस सेवा बेहद लाभकारी साबित हो रही है। ऐसे ही, यह खबरें भी लगातार मिल रही हैं कि कैसे लॉकडाउन के दौर में घरेलू हिंसा के मामलों में इजाफे के बीच कई पीड़िताओं ने 1090 पर फोन कर राहत पाई। समाजवादी सरकार में शुरू की गईं इन सेवाओं के जरिए ही वर्तमान सरकार कोरोना संक्रमण के खिलाफ लड़ाई लड़ पा रही है।

नाम बदलने का खेल

उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार ने अपने अब तक के कार्यकाल में प्रदेश को कुछ नया तो नहीं दिया, अलबत्ता समाजवादी सरकार के समय शुरू की गई योजनाओं का नाम बदलकर उनका श्रेय खुद लेने की कोशिशें जरूर की। जो विश्वस्तरीय डॉयल 100 सेवा अखिलेश जी ने अपनी सरकार में शुरू की थी उसका भी नाम भाजपा सरकार ने बदलकर डॉयल 112 कर दिया- लेकिन कहते हैं न कि काम बोलता है- तो प्रदेश की जनता भी हकीकत जानती है।

इटावा के सैफई स्थित आयुर्विज्ञान संस्थान, लखनऊ में डॉ राम मनोहर लोहिया संस्थान व आजमगढ़, कन्नौज, बदायूं के मेडिकल कॉलेज में समेत तमाम चिकित्सालय और अस्पतालों जिनकी नींव समाजवादी सरकारों में रखी गईं या ये पूरी हुईं, वे आज इस वैश्विक महामारी के काल में अपनी उपयोगिता साबित कर रही हैं। सैफई आयुर्विज्ञान संस्थान आज मध्य यूपी में कोरोना के खिलाफ लड़ाई में बड़े केंद्र के तौर पर उभरा है। सैफई में न सिर्फ मध्य यूपी व ब्रज क्षेत्र के बड़े हिस्से के मरीज पहुंचते हैं बल्कि मध्यप्रदेश के भी कई जिलों के मरीज इलाज के लिए आ रहे हैं। इसी तरह से पूर्ववर्ती सरकार में अखिलेश यादव द्वारा शुरू की गई मुख्यमंत्री कॉल सेंटर के जरिए भी आज प्रदेश सरकार जिलों में अधिकारियों, कर्मचारियों से लगातार संवाद स्थापित कर वैश्विक महामारी के खिलाफ लड़ाई लड़ रही है।

सामाजिक न्याय से समाजवाद

ऋचा सिंह
पूर्व अध्यक्ष, इलाहाबाद केंद्रीय विवि

हमारा देश अपनी आजादी के 72 वर्ष पूरा कर चुका है परंतु जातिगत असमानताओं व आर्थिक विषमता की समस्याओं से देश आज भी जूझ रहा है।

14 अप्रैल, बाबा साहब डॉ भीमराव अम्बेडकर की जयंती और 23 मार्च डॉ राममनोहर लोहिया की जयंती के पर उनके उन विचारों की चर्चा बेहद आवश्यक है जो समाजवादी आंदोलन की नींव हैं।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया बीसवीं सदी के सबसे बड़े युगनेता और विचारकों में से एक हुए। ऐसे युगनेताओं का चिंतन एवं राजनैतिक विचार सिर्फ़ किसी काल, समय,स्थान के लिए ही नहीं होता बल्कि समाज और मानवता के लिए प्रत्येक काल में प्रासंगिक रहता है।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया के राजनीतिक-सामाजिक जीवन और दर्शन में काफी समानताएं देखने को मिलती है। आप दोनों ने ही अपने विचारों और राजनैतिक संघर्षों के माध्यम से 20वीं शताब्दी की राजनीति में उथल-पुथल ला दी थी। उनके तर्कपूर्ण विचारों से विरोधी भी उनकी विद्वता के मुरीद थे। अपने जीवन के बाद भी अपने विचारों के माध्यम आप भारतीय राजनीती और समाज को दिशा दें रहे।

दोनों ही युगनेता भारतीय समाज के गरीब, दलित, पिछड़े, महिला और कमज़ोर वर्गों के सबसे बड़े प्रेरणा स्त्रोत बने।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया की प्रासंगिकता और लोकप्रियता इसी बात से आंकी जा सकती है कि, जो राजनैतिक विचारधारा और पार्टियां उनके अपने जीवन काल में उनके खिलाफ थीं आज वह उनके नाम को अपने साथ जोड़ने की होड़ में लगी हुई उनका गुणगान करती नज़र आती हैं।

डॉ अंबेडकर बेहद सामान्य परिवार एवं दलित समाज से थे और डॉ लोहिया बेहद सामान्य पृष्ठभूमि वाले परिवार से। इसके बावजूद दोनों अपने समय की सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को पीछे छोड़ते हुए शिक्षा के क्षेत्र में असाधारण विद्यार्थी के रूप में उभरे, उच्च शिक्षा के लिए दुनिया के सर्वाधिक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में दाख़िला लिया और अपना अध्ययन-अध्यापन का कार्य पूरा किया। विद्यार्थी काल से ही दोनों युगपुरुष प्रखर विद्यार्थी थे। बाबासाहेब ने लंदन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स से पीएचडी की डिग्री हासिल की, वही लोहिया जी ने जर्मनी के हम्बोल्ट, बर्लिन विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पीएचडी की डिग्री प्राप्त की। इतना ही नहीं दोनों महान नेता हिंदी और अंग्रेजी के साथ-

साथ कई देशी और विदेशी भाषाओं के जानकार थे।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया ने राजनैतिक व्यस्तताओं एवं आर्थिक तंगी के बावजूद जीवन पर्यन्त व्यवस्थित ढंग से अकादमिक कार्य जारी रखा और काफी लिखने-पढ़ने का काम किया। आप दोनों ने ही बहुत सी किताबें भारतीय समाज और राजनीति पर लिखी जो आज भी लाखों-करोड़ों देशवासियों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं और देश - विदेश के कई विश्वविद्यालयों में पढ़ी और पढ़ाई जाती है।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया दोनों ही समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों से खासा प्रभावित थे। वे भारतीय रूढ़िवादी परंपराओं एवं विचारों के आलोचक थे तथा आधुनिक लोकतंत्र और समाजवाद के मॉडल को लागू करना चाहते थे।

संसदीय राजनीति में डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया को उनकी विद्वता, कद एवं राजनीतिक समझदारी के अनुरूप कभी जगह नहीं मिल पायी। जहां बाबा साहब ने स्वतंत्र भारत का संविधान लिखने और देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, उसी स्वतंत्र भारत में उन्होंने कभी कोई लोकसभा चुनाव नहीं जीता। लोहिया जी ने कई चुनाव लड़े पर अपने राजनैतिक जीवन के अंत में एक बार लोकसभा चुनाव जीत पाये। पर उनकी प्रखर राजनीतिक चेतना और राजनीतिक शुचिता ही उनकी पहचान थी जिससे उन दोनों ने कभी समझौता नहीं किया , यही कारण था कि अपनी राजनीतिक पार्टियों के भीतर एवं जिन राजनीतिक दलों से वे जुड़े थे,उनकी समय-समय पर कटु आलोचना से भी परहेज़ नही किया और वैचारिक मतभेदों के चलते दूरियां बनाने में भी संकोच नहीं किया।

संसदीय राजनीति में दोनों की सीमित सफलता यह भी इंगित करती है कि उस समय की राजनीति ,वंचित,पिछड़े ,सामाजिक हाशिये तथा राजनीतिक शुचिता वाले विचारकों और नेताओं के नेतृत्व को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थी।

इसके अलावा उस समय के सत्ता वर्ग या सत्तासीन नेताओं ने हमेशा हर चुनाव में अपना एड़ी -चोटी का जोर इस बात पर लगाया कि डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया दबे कुचले वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में कभी संसद न पहुंचे। तमाम कोशिशों के बावजूद दोनों ही महापुरुषों का प्रभाव भारतीय राजनीति और समाज पर ये रहा कि जो मशाल उन्होंने जलाई थी वो उनके जाने के बाद सन 1980 और 1990 के दशक में प्रकाशपुंज बन कर पूरे देश में जगमगा उठी।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया दोनों ही समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों से खासा प्रभावित थे। वे भारतीय रूढ़िवादी परंपराओं एवं विचारों के आलोचक थे तथा आधुनिक लोकतंत्र और समाजवाद के मॉडल को लागू करना चाहते थे।

बाबा साहब और लोहिया जी का वैचारिक असर अद्वितीय है। बल्कि कहा जा सकता है कि दोनों के जाने के बाद उनका वैचारिक असर और भी ज्यादा असरदार एवं प्रासंगिक होता जा रहा है। आप दोनों ने बेहद महत्वपूर्ण एवं व्यवहारिक विचारों का प्रतिपादन किया, खूब लेखन किया, उनके रचना संग्रह बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं जिसका जन जागरण किया जाना आज के दौर में बेहद जरूरी है।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया ने अपने लेखन और राजनैतिक आंदोलनो में संपूर्ण राष्ट्र और सामाजिक समस्याओं पर अपने विचार रखे, लेकिन उन्होंने जाति उन्मूलन, समाज में महिलाओं की समानता और समाजवाद पर सर्वाधिक रूप से जोर दिया।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया, दोनों ही समाज को जाति की विषमताओं से मुक्ति दिलाना चाहते थे और दोनों ही जाति उन्मूलन आंदोलन के सबसे बड़े महानायक के रूप में उभरे।

डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया देश के सर्वांगीण विकास के लिए सामाजिक समानता को आवश्यक तत्व के रूप में देखते रहे। वे यह मानते थे कि जातिगत भेदभाव को मिटाये बिना, सामाजिक समानता स्थापित नहीं हो सकती और न सही मायनों में भारत राष्ट्र बन सकता। वे अपने जीवन के अंतिम दम तक इस बात पर अडिग रहे कि जातीय असमानता के रहते राजनैतिक या आर्थिक समानता की बात करना निरर्थक है। बाबा साहब अपनी किताब "एनिलेशन ऑफ कास्ट" में जातिगत विषमता और जाति उन्मूलन की आवश्यकता की विस्तार से चर्चा करते हैं। बाबा साहब ने सामाजिक असमानता तथा शोषण को बहुत करीब से

बने। उनका मानना था कि सामाजिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता बेमानी होती है और समाज की अमानवीय कुरीतियां सिर्फ़ व्यक्ति विशेष या वर्ग विशेष के लिए ही आहितकर नहीं होती बल्कि उससे कहीं ज्यादा राष्ट्र के लिए अहितकर होती हैं। बाबा साहब ने जाति व्यवस्था के सिद्धांतों का विरोध किया और कहा कि एक व्यक्ति दूसरे का शोषण करे यह स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है, कथित जातियों की श्रेष्ठता, जाति की विषमता ,जातीय घृणा को खाद-पानी देने का काम करती है। वह व्यवस्था को पूर्णरूपेण बदलने और उसके स्थान पर एक नई व्यवस्था स्थापित करने के पक्षधर थे। बाबा साहब ने भारत में सभी कुरीतियों की जड़, जाति को माना और कहा बिना इसे मिटाये समाज का सर्वागींण विकास संभव नहीं है और जाति व्यवस्था के विनाश को सामाजि, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तन की बुनियाद माना।

वहीं दूसरी तरफ लोहिया जी अपनी किताब 'भारत में जातिवाद' में मानते हैं कि जन्म के आधार पर योग्यता के निर्धारण से समाज एवं देश का बहुत नुकसान हुआ है । उनका मानना था कि "आर्थिक गैर बराबरी और जाति-पाति जुड़वा राक्षस है", एक से लड़ना है तो दूसरे से लड़ना आवश्यक है। लोहिया जाति प्रथा के धुर विरोधी थे और इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत में असमानता सिर्फ आर्थिक नहीं है बल्कि सामाजिक भी है। वह जाति को समाज में ख़त्म करने की बात बहुत साफ़गोई से करते थे।

डॉ लोहिया ने अवसर के सिद्धांत पर बहुत ज़ोर दिया, जहाँ लोगों का मानना था कि योग्यता के आधार पर अवसर मिलना चाहिए वहीं लोहिया जी का यह कहना था कि "अवसर देने से योग्यता विकसित होती है", जाति अवसर को सीमित करती है, सीमित अवसर,क्षमता को संकुचित करते है और संकुचित क्षमता अवसरों को और भी सीमित कर देती है।

"अवसर देने से योग्यता विकसित होती है", जाति अवसर को सीमित करती है, सीमित अवसर,क्षमता को संकुचित करते है और संकुचित क्षमता अवसरों को और भी सीमित कर देती है।

अतः लोहिया जी ने सर्वप्रथम अवसरों की समानता अर्थात योग्यता के अर्जन के लिए पहले अवसर देने की बात कही और यही वह अन्य विचारकों से अलग ख़ड़े नज़र आते है ।

लोहिया जी का नारा था "पिछड़े पावें 100 में 60" अर्थात 100 में 60 जगह उनको देने की बात की जिनमें दलित, आदिवासी , जुलाहा, पिछड़े और महिलाएं आती हैं। डॉ लोहिया जाति को भारत को पीछे ले जाने वाले सबसे महत्वपूर्ण कारकों में से एक मानते हैं । पिछड़ों के हक़ की लड़ाई लड़ने वाले डा. लोहिया खुद जाति नहीं मानते थे और कहते थे "मेरे मां-बाप" ज़रूर मारवाड़ी हैं पर मैं नहीं रहूंगा, और हमेशा पिछड़ों, वंचितों, स्त्रियों की हक की बात मजबूती से उठाते रहे।

जाति विषमताओं को लेकर डॉ अंबेडकर और डॉ लोहिया में कई समानताएं देखने को मिलती है । पहला, दोनों ही मानते थे कि जाति-विषमता और भेदभाव एक विशिष्ट रूप का शोषण और असमानता है और इस असमानता को मिटाने के लिए एक अलग तरह के संघर्ष और सामाजिक परिप्रेक्ष्य को समझने की जरूरत है। मार्क्सवादियों से अलग दोनों का ही मानना था की सिर्फ आर्थिक समानता से भारत में सामाजिक समानता नहीं आयेगी। सही मायनों में

सामाजिक समानता के लिए जाति विषमता को एक अलग समस्या मानते हुए, एक अलग और खास तरह के लड़ाई की जरूरत है।

दूसरा,दोनों ही विचारकों का मानना था की जाति की समस्या सिर्फ दलित, पिछड़ों या सताये हुए वर्ग की नहीं है बल्कि यह राष्ट्रीय समस्या है। जाति असमानता किसी भी राष्ट्र को सही मायने में राष्ट्र बनाने और बंधुत्व की भावना लाने में बहुत बड़ी रूकावट है। अतः जाति विषमता को किसी वर्ग या जाति विशेष की समस्या न मानते हुए हमेशा राष्ट्र की समस्या के रूप में देखना चाहिए और सभी को साथ आकर जातीय असमानता के खिलाफ लड़ाई लड़नी चाहिए।

डॉ अम्बेडकर और डॉ लोहिया दोनों ही युगनेता सामाजिक आंदोलन के बड़े पुरोधा थे और अपने राजनैतिक जीवन में हमेशा जाति असामनता के खिलफ लड़ते नज़र आये। "सामजिक न्याय" उनका सबसे बड़ा नारा था।

तीसरा जाति उन्मूलन और सामाजिक न्याय के लिए आप दोनों ने आरक्षण की व्यस्था की बात की। डॉ अंबेडकर ने दलितों और आदिवासियों के उत्थान के लिए संविधान सभा में पुरजोर तरीके से बात उठायी और उनकों उनका हक़ स्वतन्त्र भारत के संविधान में आरक्षण के रूप में दिलवाया।

डॉ लोहिया ने एक व्यापक परिभाषा देते हुए - दलित, आदिवासी, जुलाहा, अनसार, धुनिया, पिछड़े और महिलाएं सभी को शोषित और समाज में सताये हुए मानते हुए सभी के लिए 60 प्रतिशत आरक्षण की मांग पुरजोर रूप से की।

स्त्री-मुक्ति एवं महिलाओं की समानता के विषय पर भी बाबासाहेब और लोहिया जी काफी करीब दिखाई पड़ते हैं। अंबेडकर नारी स्वतंत्रता के बड़े हिमायती थे। उस समय का समाज नारियों के स्वतंत्रता का घोर विरोधी था, अंबेडकर ने नारी पराधीनता का गहन अध्ययन किया उनका मानना था कि नारी के अधिकारों की उपेक्षा से समाज की प्रगति की गाड़ी अवरुद्ध हुई है। नारी उत्थान के लिए बाबा साहब ने जीवन पर्यंत संघर्ष किया,उन्होंने नारी की स्वतंत्रता,समानता और संपत्ति के अधिकार, गर्भवती महिलाओं के प्रसूति अवकाश का समर्थन किया तथा बाल विवाह का विरोध किया।

जाति असमानता किसी भी राष्ट्र को सही मायने में राष्ट्र बनाने और बंधुत्व की भावना लाने में बहुत बड़ी रूकावट है।

वह नारी संगठन के प्रबल हिमायती थे, उनका मानना था कि यदि नारी निश्चय कर ले

तो समाज की अधिकांश बुराइयां दूर हो सकती है जिसके लिए महिलाओं को पुरुषों के साथ चलने के लिए कहा। स्वयं बाबा साहब ने दलित उत्थान के संघर्षों में पुरुषों के साथ स्त्रियों को भी लिया है। उनका कहना था, "मैं किसी भी समाज की प्रगति का आंकलन वहाँ की महिलाओं की सामजिक प्रगति से करता हूँ" ।

बाबा साहब ने कहा कि बिना महिलाओं की भागीदारी के कोई भी समाज और राष्ट्र संपन्न नहीं हो सकता और न ही प्रगति कर सकता है और जाति और लैंगिक असमानता को साथ जोड़ कर देखा और कहा की दोनों के उन्मूलन से ही सही मायने में सामाजिक न्याय और समानता आयेगी और बिना महिला समानता के जातीय समानता की लड़ाई अधूरी है।

बाबा साहब ने महिलाओं को कानूनी रूप से अधिकार दिलाने हेतु भारतीय संविधान सभा में पुरजोर वकालत की और संविधान में महिलाओं को बराबरी का हक़ दिलाया। संसद में उन्होंने महिलों के हक़ और समानता के लिए "हिंदू कोड बिल" प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने महिलाओं को समान नागरिक का दर्जा देते हुए उन्हें तलाक और सम्पत्ति में बराबरी का हक़ देने का प्रावधान किया।

बिना महिलाओं की भागीदारी के कोई भी समाज और राष्ट्र संपन्न नहीं हो सकता और न ही प्रगति कर सकता है

समाज और राजनीति में महिलाओं की समानता को लेकर डॉक्टर लोहिया भी अपने विचारों में बहुत स्पष्ट थे और बड़ी बेबाकी से अपनी राय को उस दौर में रखा। बाबा साहब की तरह उनकी भी स्पष्ट मान्यता थी कि कोई भी समाज तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक कि उसकी आधी आबादी यानी महिलाओं की विकास प्रक्रिया में हिस्सेदारी नही होगी, उनको स्वतंत्रता और अवसर उपलब्ध नहीं होंगे। डॉ लोहिया बीसवीं सदी के भारत के उन चंद नेताओं में से थे जिन्होंने महिलाओं के सवाल पर गहराई से विचार किया। महिला सवालों में

भी महिलाओं की गरिमा उनका केंद्रीय मुद्दा था । वह कन्या भ्रूण हत्या , दहेज प्रथा की कठोर शब्दों में निंदा करते थे । लोहिया जी के भाषणों में , उनके लेखन में महिलाओं के प्रति उनके अथाह प्रेम, सम्मान और चिंता जाहिर होती है ।

वह महिलाओं को उत्पादक मनुष्य के रूप में मानते हैं जिसकी देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका है। उनकी दृष्टि में एक प्रसन्न व समृद्ध समाज वही हो सकता है जिसमें महिलाओं के साथ न्याय हो, महिला समानता हो। लैंगिक समानता के मुद्दे पर उनके विचार और लैंगिक समानता के आदर्श के प्रति लोहिया जी की पूर्ण प्रतिबद्धता बेहद महत्वपूर्ण और दिल को छूने वाली है। डॉ लोहिया ने महिलाओं के आरक्षण की मज़बूती से वकालत की, वह उनको राजनीति, सरकारी नौकरी और शिक्षा में विशेष अवसर दिए जाने की सबसे बड़े हिमायती थे। लोहिया जी ने जिन सप्त क्रांति का आवाहन किया उसमें सबसे पहली क्रांति के रूप में नर - नारी की समानता के विचार को प्रतिपादित किया और कहा कि महिलाओं के सशक्तिकरण के बिना सामाजिक समृद्धि संभव नहीं है। उनका यह भी मानना था की महिलाओं की भागीदारी राजनीति में बराबरी की होनी चाहिए। अतः डॉ आंबेडकर की तरह डॉ लोहिया ने भी राजीनतिक पार्टियों और आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी और महिलाओं के नेतृत्व पर विशेष बल दिया।

देश में बिना समाजवादी व्यवस्था के सही मायने में समानता नहीं लायी जा सकती। सामजिक न्याय की लड़ाई के लिए भी समाजवादी विचार और व्यवस्था ही एक मात्र विकल्प और रास्ता है।

देश को संविधान देने वाले बाबा साहब ने समाजवाद के सिद्धांतों को स्वीकारा और संविधान के ऐसे मॉडल का निर्माण किया जिसका स्वरूप समाजवादी था। बाबा साहब के ही जोर देने पर ही राज्य के नीति निर्देशक तत्त्व की परिकल्पना में समाजवादी विचार और नीतियों को अपनाया गया।

उनका मानना था कि समाजवादी विचार को अपनाए बिना भारत में ना तो दलितों की दशा को सुधारा जा सकता है और ना ही वंचित या सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों को मुख्यधारा में शामिल किया जा सकता है । डॉ अम्बेडकर जो भारतीय राजनीती में समानता, लोकतंत्र और सामजिक न्याय के पुरोधा थे उनका समाजवाद के तरफ आकर्षित होना भी स्वाभाविक था, आखिर समाजवादी विचारधारा ही आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक समानता की बात करती है, उनका मानना था कि देश में बिना समजवादी व्यवस्था के सही मायने में समानता नहीं लायी जा सकती। सामजिक न्याय की लड़ाई के लिए भी समाजवादी विचार और व्यवस्था ही एक मात्र विकल्प और रास्ता है। उनका मानना था कि किसी का भी सामाजिक स्तर तभी ऊंचा होता है जब उसका आर्थिक स्तर में सुधार होता है और लोगों का आर्थिक स्तर, समाजवादी स्वरूप वाली यानी सरकार के नियंत्रण वाली व्यवस्था में ही सुधर सकता है। बाबा साहब का यकीन यूरोपियों मॉडल में नहीं बल्कि राज्य कल्याणकारी यानी समाजवादी मॉडल में था, वह यूरोपीय मॉडल को अमीरों का मॉडल मानते थे।

यह इस देश की विडंबना है कि बाबा साहब का संविधान जिसका स्वरूप समाजवादी है, बावजूद इसके आज की सरकारें पूंजीवादी

मॉडल पर चलते हुए गरीबों से ज्यादा अमीरों के लिए कार्य कर रही है जिसके परिणामस्वरूप अमीरी- ग़रीबी की खाई बढ़ती जा रही है।

बाबा साहब ने गरीबों- वंचितों के हित में देश के औद्योगिक विकास के लिए समाजवाद को आवश्यक माना।

डॉक्टर अंबेडकर ने 15 मार्च 1947 को संविधान में कानून द्वारा "राज्य समाजवाद" को लागू करने के लिए संविधान सभा को ज्ञापन दिया और मांग की, कि भारत अपने संविधान के कानून के अंश के रूप में यह घोषित करें की उद्योग, कृषि, भूमि का राष्ट्रीयकरण और खेती का सामूहिकीकरण हो।

लेकिन यह हमारे देश का दुर्भाग्य रहा कि "राज्य समाजवाद" के प्रस्ताव को संविधान में नहीं अपनाया गया।

अगर संविधान में यह अवधारणा अपनायी गई होती तो देश में असमानता सामाजिक कुरीतियों एवं अमीर-गरीब की खाई इतनी गहरी ना होती।

डॉक्टर अंबेडकर की ही तरह डॉक्टर लोहिया भी यूरोपीय समाजवाद यानि पूंजीवादी समाजवाद को एशियाई देशों, विशेषकर भारत के लिए कतई उपयुक्त नहीं मानते थे। उनके अनुसार भारत के समाजवादियों को मौलिक चिंतन करना चाहिए तथा अपनी नीतियां उन संदर्भों में विकसित करनी चाहिए जो सदियों पुरानी असमानता एवं सामंतवाद के बुराइयों से देश को निकाल सके

"सन 1952 में रंगून में आयोजित कांफ्रेंस को संबोधित करते हुए डॉ लोहिया ने कहा कि एशिया में जहां आर्थिक समस्याएं मुंह बाए खड़ी हुई है पश्चिम ढंग का समाजवादी प्रजातंत्र कतई उपयोगी नहीं हो सकता है"

वह पूंजीवादी के साथ-साथ साम्यवादी अर्थव्यवस्था के विचार को भी खुले रुप से अस्वीकार करते थे।

भारत के समाजवादियों को मौलिक चिंतन करना चाहिए तथा अपनी नीतियां उन संदर्भों में विकसित करनी चाहिए जो सदियों पुरानी असमानता एवं सामंतवाद के बुराइयों से देश को निकाल सके

डॉक्टर लोहिया राजनीतिक तथा आर्थिक सत्ता के पूर्ण विकेंद्रीकरण पर जोर देते थे।

इस प्रकार डॉक्टर लोहिया एशियाई दृष्टि से एक ऐसे विकेंद्रित समाजवाद के समर्थक थे जिसका अनिवार्य अर्थ एक ऐसी राजनीति था, जिसकी बुनियाद समाजवादी सिद्धान्तों, छोटी मशीनों पर आधारित उद्योग धंधे, सहकारी श्रम पर आधारित कृषि, ग्राम स्वराज पर आधारित चौखंभा राज्य व्यवस्था के माध्यम से निर्मित की जाये।

डॉ लोहिया और डॉ अम्बेडकर एक दूसरे के विचारों से काफ़ी प्रभावित थे और सहमति रखते थे क्योंकि सामाजिक न्याय की अवधारणा के विचार काफ़ी मिलते थे।

सन 1955-56 के बीच दोनों ही युग नेताओं द्वारा भारतीय राजनीति में बदलाव के लिये साझा प्रयास शुरू करने की कोशिशें भी हुई। बाबा साहब अम्बेडकर और राम मनोहर लोहिया जी के बीच कई बार पत्रों के माध्यम से संवाद हुआ और जिसमें दोनो नेता एक मंच पर आने की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे। लेकिन विडंबना यह रही कि बाबा साहब की असमायिक मृत्यु से इन कोशिश को बड़ा झटका लगा के कारण दोनों ही युगनेता-विचारक कभी भी एक साथ एक मंच पर नहीं आ सके।

डॉ अम्बेडकर और डॉ लोहिया दोनों ही अपने-अपने तरीकों से समतावादी समाज की स्थापना पर ज़ोर देते रहे और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और समाजवाद के आदर्श को सर्वोपरि रखा क्योंकि उनका मानना था कि इन तत्वों के बिना समतामूलक समाज की स्थापना नहीं कि जा सकती और न ही सामाजिक न्याय की।

हम बाबा साहब और लोहिया जी की जयंती के मौक़े पर उनको श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं और हमें प्रयास करने होंगे कि बाबा साहब भीमराव अंबेडकर और डॉ राम मनोहर लोहिया के विचारों को सांमजस्यपूर्ण ढंग से समाजवादी आंदोलन के रूप में आम जनमानस के बीच ले जायें,सामाजिक न्याय की स्थापना के लिये। और उनके आधुनिक समाजवाद के सपनों को पूरा कर सकें।

(यह लेखक के अपने विचार हैं)

कोरोना संकट

सार्वजनिक क्षेत्र ही समाज के काम आया

प्रेम कुमार
पत्रकार, लेखक

महाराष्ट्र की सरकार ने कोरोना के गम्भीर खतरे से निपटने के लिए मई महीने की शुरुअ◌ात पर दो बड़े फैसले लिए। पहला, निजी संस्थानों के डॉक्टरों से 15 दिन कोरोना मरीजों की सेवा कराना। दूसरा, केंद्र सरकार के संस्थानों रेलवे, मुंबई पोर्ट ट्रस्ट, सेना, नौसेना समेत केंद्र सरकार के अन्य उपक्रमों के अस्पतालों, संस्थानों और इमारतों की सुविधाएं हासिल करने का आग्रह। पहला फैसला बाध्यकारी है और दूसरा फैसला आग्रह है। ये दोनों फैसले कोरोना संकट की चुनौती का जवाब ढूंढ़ते देश से कुछ मौलिक सच्चाई बयां करते हैं।

एक सच्चाई है कि निजी क्षेत्र को जितना योगदान कोरोना संकट में दिखलाना चाहिए था, उसने नहीं दिखलाया। यह बात सिर्फ अस्पतालों तक के लिए नहीं है।

एक सच्चाई है कि निजी क्षेत्र को जितना योगदान कोरोना संकट में दिखलाना चाहिए था, उसने नहीं दिखलाया। यह बात सिर्फ अस्पतालों तक के लिए नहीं है। अपने-अपने गांवों के लिए पैदल निकल चुके मजदूरों के मोबाइल फोन रीचार्ज कराने की अपील चाहे समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष अखिलेश यादव और राष्ट्रीय जनता दल के तेजस्वी यादव समेत विपक्ष के अन्य नेताअ◌ो◌ं ने की हो, मगर उस बेहद आपात जरूरत के लिए निजी टेलीफोन कंपनियों ने उदारता नहीं दिखलायी। सड़क मापते मजदूरों को हाईवे के किनारे बिल्डरों

के खाली बिल्डिंग में भी ठहराया जा सकता था, उनके लिए रहने-ठहरने और खाने-पीने या फिर क्वारन्टीन करने की व्यवस्था हो सकती थी। यूपी के सीएम योगी आदित्यनाथ ने ऐसी घोषणा भी की थी, मगर फिर वे खुद अपनी घोषणा भूल गये। बिल्डर तो मदद के लिए सामने आए ही नहीं।

देश के निजी अस्पताल और नर्सिंग होम के पास 60 फीसदी बेड हैं और उनकी संख्या 8.5 लाख से 9 लाख के करीब है। फिक्की का दावा है कि प्राइवेट हॉस्पिटल व नर्सिंग होम में भर्ती होने वाले मरीजों की तादाद भी 60 फीसदी हुआ करती है। इतना ही नहीं देश के 80 फीसदी डॉक्टर भी यहीं होते हैं। मगर, यह क्षमता कोविड-19 संकट के दौर में दिखी नहीं। सारा बोझ सरकारी अस्पतालों ने अपने ऊपर लिया।

19 मई को बिहार के स्वास्थ्य विभाग में प्रमुख सचिव संजय कुमार ट्वीट कर बताते हैं कि संकट की घड़ी में प्रदेश के निजी स्वास्थ्य सेक्टर ने पूरी तरह से अपना हाथ खींच लिया है। निजी क्षेत्र के पास 48 हजार बेड हैं और सार्वजनिक क्षेत्र के अस्पतालों के पास 22 हजार। संजय कुमार का कहना है कि ऐसे में जबकि 90 फीसदी ओपीडी भी बंद हैं, तब भी कोविड 19 तो छोड़िए सामान्य सेवाएं भी उपलब्ध नहीं हैं। वे ट्वीट में लिखते हैं कि यह सार्वजनिक क्षेत्र ही है जो अग्रिम मोर्चे पर तैनात है और कोविड की टेस्टिंग, उसके संक्रमण को रोकने और उपचार में जुटा है।

हर जगह मजदूर सड़क पर उतर आए क्योंकि उनके पास किराए को पैसे नहीं थे, रहने को घर नहीं था, नौकरी जा चुकी थी और खाने को भोजन नहीं था।

स्पष्ट है कि जो कदम महाराष्ट्र की सरकार ने निजी डॉक्टरों के लिए उठाया है वही कदम बिहार, यूपी और दूसरे राज्यों को भी उठाना होगा। यह विडंबना है कि मार्च में प्राइवेट हॉस्पिटल के पास अमूमन पहुंचने वाले मरीजों का 40 फीसदी भी नहीं पहुंचा, जो अप्रैल में नाम मात्र का रह गया। इसके बावजूद कोरोना मरीजों को देखने की प्राथमिकता निजी अस्पतालों ने नहीं दिखलायी। सवाल ये है कि कोविड-19

अस्पताल के तौर पर निजी अस्पतालों को सुरक्षित करने में कोताही क्यों दिखलायी गयी? निजी डॉक्टरों का कोरोना संकट के समय निष्क्रिय रहना क्या देश हित में हो सकता है?

64 फीसदी ऐसे मजदूरों के पास 100 रुपये से कम रह गये थे। मजदूरों की यह दुर्दशा इसलिए हुई क्योंकि निजी क्षेत्र ने अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई।

जो सरकारी डॉक्टर कोरोना वॉरियर्स बनकर अपने घर से दूर सेवा दे रहे हैं, उनके लिए निजी अस्पतालों को रहने-ठहरने की जगह के रूप में भी इस्तेमाल के लायक बनाया जा सकता था। मगर, ऐसा नहीं हुआ। बड़े-बड़े पांच सितारा होटल या सामान्य होटल भी बगैर कस्टमर के खाली पड़े हैं। क्या उनका इस्तेमाल कोरोना वॉरियर्स के लिए नहीं हो सकता था? न तो निजी होटल मालिकों ने ऐसी पहल की और न ही सरकार ने उन पर किसी सख्ती की जरूरत समझी। अपवाद के तौर पर कुछ शहरों में कुछ होटलों को जरूर इस काम के लिए लिया गया।

संकट की घड़ी में काम भारतीय रेल ही आया। वही रेलवे जिसके निजीकरण पर मोदी सरकार आमादा है। 2019-20 में भी रेल विकास निगम लिमिटेड और इंडियन रेलवे कैटरिंग एंड टूरिज्म कॉरपोरेशन के क्रमश: 12.12% और 12.6% विनिवेश

किया गया। संकट की घड़ी में रेलवे ने कोरोना मरीजों के लिए 20 हजार कोच तैयार करने का जिम्मा लिया, जिनमें 3 लाख 20 हजार बेड की क्षमता होगी। 5 हजार कोच और 80 हजार बेड रेलवे ने अप्रैल के दूसरे हफ्ते में ही तैयार कर लिया था।

रेलवे की ही तर्ज पर क्या निजी बसों का इस्तेमाल एम्बुलेंस के तौर पर नहीं किया जा सकता था? कोरोना वॉरियर्स के लिए भी इनका इस्तेमाल हो सकता था, मगर ऐसी पहल सरकार ने नहीं दिखलायी। जब राज्य सरकारों ने अपने-अपने प्रदेश के लोगों को दूसरे प्रदेश से लाने की पहल की, तब उनकी प्राथमिकता में एसी बसें थीं। ऐसा इसलिए क्योंकि प्राइवेट संस्थानों का फायदा कराया जा सके। सरकारी बसें जहां भी इस्तेमाल में आयीं, मुफ्त में आयीं। वहीं, प्राइवेट बसों के लिए रकम चुकायी गयी। कोरोना संकट में प्राइवेट और सरकारी बसों का फर्क यहां भी दिखा।

जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लॉकडाउन के बाद कहा था कि किसी की नौकरी नहीं जाएगी, किसी की तनख्वाह नहीं कटेगी, किराएदारों से किराए नहीं लिए जाएंगे तो श्रमिक वर्ग में एक उम्मीद जगी थी कि वह लॉकडाउन को झेल लेगा। मगर, सच बिल्कुल अलग तरीके से सामने आया। महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, केरल हर जगह मजदूर सड़क

कोरोना संकट ने उस सोच पर चोट किया है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से छुटकारा पाने पर जोर था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2014 में पहली बार जीतकर आने के बाद सबसे पहले विनिवेश की ही बात कही थी।

पर उतर आए क्योंकि उनके पास किराए को पैसे नहीं थे, रहने को घर नहीं था, नौकरी जा चुकी थी और खाने को भोजन नहीं था। टाइम्स ऑफ इंडिया की एक रिपोर्ट के मुताबिक 64 फीसदी ऐसे मजदूरों के पास 100 रुपये से कम रह गये थे। मजदूरों की यह दुर्दशा इसलिए हुई क्योंकि निजी क्षेत्र ने अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाई।

आंकड़े भी इस सच्चाई को बयां करते

हैं। फरवरी में बेरोजगारी की दर 7.78 फीसदी थी जो 3 मई को 27.11 फीसदी के स्तर पर जा पहुंची। 14 करोड़ लोगों की नौकरियां चली गयीं। देश के कुल वर्कफोर्स से उसका 35.4 फीसदी हिस्सा अलग हो गया। बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने कर्मचारियों की छंटनी की, तनख्वाह में कटौती की। सरकार ने भी मानो एक तिहाई वर्कफोर्स के साथ फैक्ट्रियां खोलने की इजाजत देकर कामगारों की छंटनी पर मुहर लगा दी। वर्क फ्रॉम होम की बात धरी की धरी रह गयी। यह छंटनी रोकने में काम न आ सकी।

पीएम केयर फंड में केंद्रीय कर्मचारियों ने अपनी एक दिन की सैलरी दी। देश में 33 लाख केंद्रीय कर्मचारी हैं। केंद्रीय राजस्व विभाग ने तो अपने कर्मचारियों के लिए

एम्स, दिल्ली के डॉक्टर विरोध करते रह गये कि वे एक दिन की सैलरी पीपीई किट खरीदने में खर्च करना चाहते हैं ताकि डॉक्टर निर्भीक होकर कोरोना मरीजों की सेवा कर सकें। मगर, जबरन उनकी सैलरी पीएम केयर में डाल दी गयी।

2021 तक हर महीने एक दिन की सैलरी पीएम केयर फंड में देने का सर्कुलर निकाल दिया। इसके अलावा महंगाई भत्ते का लाभ केंद्रीय कर्मचारियों के लिए रोक दिया गया। जाहिर है राज्यों की सरकारें भी इसी फॉर्मूले पर चलेंगी। यह सब कोरोना से लड़ाई के नाम पर हुआ।

एम्स, दिल्ली के डॉक्टर विरोध करते रह गये कि वे एक दिन की सैलरी पीपीई किट खरीदने में खर्च करना चाहते हैं ताकि डॉक्टर निर्भीक होकर कोरोना मरीजों की सेवा कर सकें। मगर, जबरन उनकी सैलरी पीएम केयर में डाल दी गयी।

केवल तेल से जुड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों ने 1031 करोड़ रुपये पीएम केयर फंड में दिए हैं। अगर महारत्न, नवरत्न और मिनी रत्न कंपनियों की बात करें तो कोल इंडिया लिमिटेड ने 221 करोड़, बीपीसीएल ने 175 करोड़, पावर ग्रिड कॉरपोरेशन ने 200 करोड़, एचएएल ने 26 करोड़ और भेल ने 15.7 करोड़ रुपये समेत करीब 70 कंपनियों ने पीएम केयर्स फंड में दान किए। रेलवे ने 151 करोड़ रुपये पीएम केयर्स फंड में दिए। यही जज्बा नामचीन निजी कंपनियों के कुछेक फोटो

इवेंट वाले अवसरों को छोड़ दें तो आम तौर पर निजी कंपनियों ने नहीं दिखलाया। उल्टे ये कंपनियां सरकार से राहत मांगती नज़र आ रही हैं।

कोरोना संकट ने उस सोच पर चोट किया है जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों से छुटकारा पाने पर जोर था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2014 में पहली बार जीतकर आने के बाद सबसे पहले विनिवेश की ही बात कही थी। उन्होंने यह सोच सामने रख दी थी कि सरकार का काम फैक्ट्रियां चलाना नहीं है। इस सोच पर बढ़ते हुए मोदी सरकार ने बीते छह साल में 2 लाख 37 हजार 243 करोड़ से ज्यादा का विनिवेश कर डाला। देखें तालिका 1. यह रकम यूपीए 2 के दौरान 5 साल में हुए विनिवेश 99 हजार 367 करोड़ के मुकाबले करीब ढाई गुणा ज्यादा है। (देखें तालिका-2)

तालिका-1

मोदी राज के 6 साल में विनिवेश (करोड़ रुपये में)

2019-20	50,298.64 Cr
2018-19	62900.53 Cr
2017-18	40230.78 Cr
2016-17	35467.87 Cr
2015-16	23996.80 Cr
2014-15	24348.71 Cr
कुल	2,37,243.33 करोड़

तालिका-2

यूपीए-2 सरकार में विनिवेश (करोड़ रुपये में)

2013-14	15,819.46
2012-13	23,956.81
2011-12	13,894.05
2010-11	22,144.20
2009-2010	23552.94
कुल	99,367.46 करोड़

कोरोना संकट ने विनिवेश की सोच को गलत ठहराया है। संकट में सार्वजनिक कंपनियां काम आयी हैं, निजी कंपनियों ने जी-चुराया है। जैसे-जैसे कोरोना संकट बढ़ता गया ये बातें भी स्पष्ट होती चली गयीं। उदाहरण के लिए पीपीई किट, वेन्टीलर्स, ग्लोव्स, एन 95 मास्क, सैनिटाइजर्स आदि को लें। ये चीजें पहले देश में जरूरी थीं, लेकिन प्राइवेट कंपनियों ने देश के ऊपर मुनाफे को प्राथमिकता दी। 29 मार्च को जब @UNDPserbia ने ट्वीट कर जानकारी दी कि 90 टन मेडिकल प्रोटेक्टिव इक्वीपमेंट लेकर बोईंग 747 का दूसरा कार्गो सर्बिया पहुंचा है तो मुनाफाखोरी प्रकाश में आयी। निजी कंपनियों की देशभक्ति का लबादा उतर गया।

वैसे भी भारत सरकार के डायरेक्टोरेट जनरल ऑफ फॉरेन ट्रेड (डीजीएफटी) की ओर से 20 मार्च को सर्जिकल और डिस्पोजेबल मास्क, वेंटीलेटर आदि के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया गया था। इससे पहले तक सरकार को सुध ही नहीं रही कि इन चीजों की जरूरत भारत में जरूरत हो सकती है। आश्चर्य की बात यह है कि डायग्नोस्टिक किट के निर्यात पर प्रतिबंध का आदेश डीजीएफटी की ओर से 4 अप्रैल को आया।

कोविड-19 का टेस्ट जो हर हाल में मुफ्त में होना चाहिए, उसके लिए भी निजी कंपनियों ने 4500 रुपये की दर तय करा ली। निजी कंपनियां कोरोना संकट में मुनाफा छोड़ने को तैयार नहीं दिखे। हद तो तब हो गयी जब चीन से आयात करायी गयी रैपिड टेस्ट किट, जिसकी लागत 245 रुपये थी उसे 600 रुपये में आईसीएमआर ने न सिर्फ खरीदा बल्कि राज्यों को उपलब्ध कराया। किसी वजह से एक विवाद के तौर पर यह मामला दिल्ली हाईकोर्ट तक जब पहुंचा, तो इस अमानवीय मुनाफाखोरी का पता चला। दिल्ली हाईकोर्ट ने इसकी कीमत 400 रुपये तय कर दी। हालांकि तब तक ये रैपिड टेस्ट किट खराब क्वालिटी के कारण खारिज की जा चुकी थी और पूरा सौदा सरकार को रद्द करना पड़ा। यह उदाहरण इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इस खरीददारी और मुनाफाखोरी में खुद केंद्र सरकार हिस्सेदार थी। कहने का अर्थ यह है कि संकट की घड़ी में निजी कंपनियों का योगदान भी कम है और सरकार का वरदान भी उसे ही मिला हुआ है।

(यह लेखक के अपने विचार हैं)

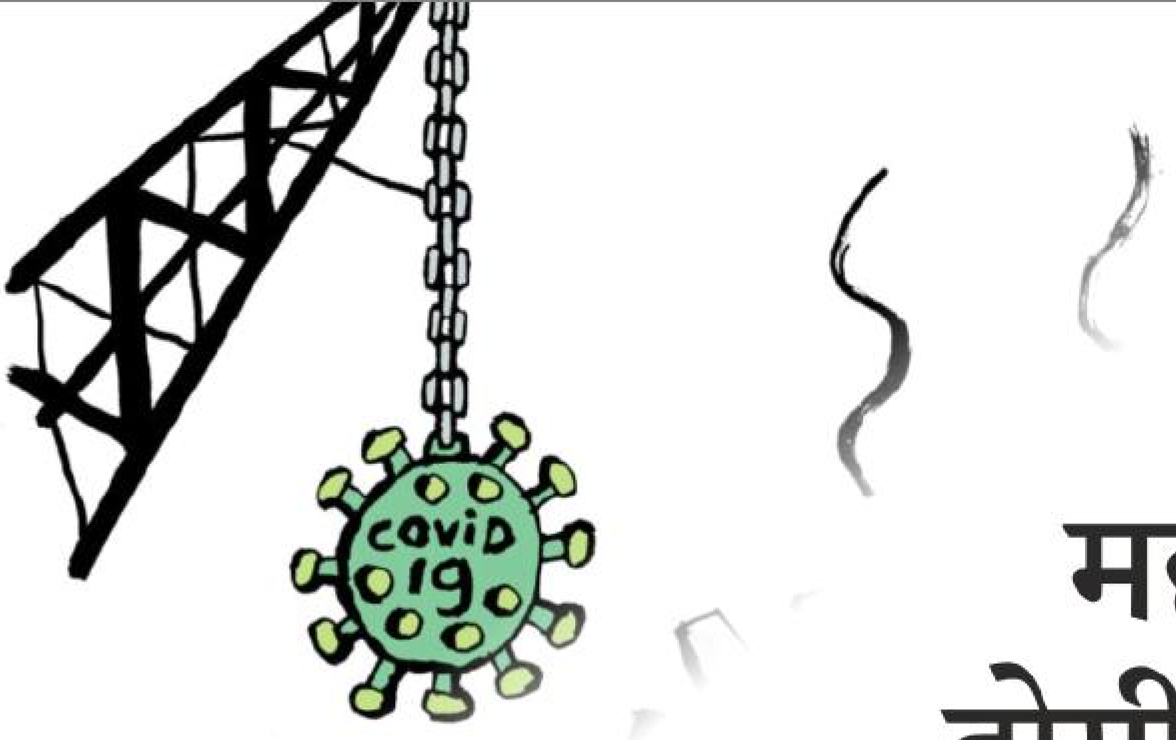

महामारी के बाद होगी नई मारामारी

अरविन्द मोहन
वरिष्ठ पत्रकार, लेखक

सोवियत संघ के संस्थापक लेनिन का एक कथन आजकल काफी सारे लोगों को याद आ रहा है कि ऐसे दशक बीत जाते हैं जब कुछ भी खास नहीं होता पर कुछ हफ्ते ऐसे आते हैं जिनमें दशकों वाले बदलाव हो जाते हैं। कहना न होगा कि यह बात याद इसलिए आ रही है कि आज हम यानि पूरी दुनिया उसी दौर में है और कोरोना नामक यह वैश्विक महामारी विदा होने के साथ दुनिया को किस रंग रूप में छोड़ेगी यह अन्दाजा लगाना मुश्किल है।

यह मुश्किल इसलिए भी है कि अभी बीमारी का ही कोई ढंग का पता नहीं है, इलाज का ही पता नहीं है, टीके का ही पता नहीं है। इतना जरूर पता है कि हाल के दशकों में जब बाजार के कहने पर वैज्ञानिक पेड़ पौधों और पशु पक्षियों के बाद प्रकृति या ईश्वर की भूमिका लेकर मानव जींस में भी छेड़छाड़ करने लगे हैं, यह बीमारी उसी की उपज है। यह भी दिखता है कि ट्रंप से लेकर हमारे नरेन्द्र मोदी जैसे नेता इसी की आड़ में अपनी नाकामियां छुपाने और चुनाव जीतने की तैयारी कर रहे हैं। इसी की आड़ लेकर चीन दुनिया का आर्थिक नेता बनना चाहता है। इसी महामारी से यूरोप रसातल में जाता दिखता है और इसी से हमारे जैसे गरीब देशों के करोड़ों कमजोर लोग और बदहाल होंगे व इस महामारी की भेंट चढ़ेंगे। अभी क्या-क्या होगा यह अन्दाजा भी मुश्किल है,पर इतना तय मानिए कि इसके बाद हमारी शासन प्रणाली में निश्चित रूप से बड़े बदलाव होंगे। साथ ही हमारी आर्थिक नीतियों एवं हमारे निजी कार्य व्यापार में भी।

जब सौ साल पहले पहला विश्वयुद्ध खत्म हुआ था तब दुनिया के तीन चार देशों में आधा अधूरा लोकतंत्र था, किसी भी देश में समाजवाद का दावा करने वाली शासन व्यवस्था न थी, हालांकि समाजवादी आन्दोलन शुरू हो चुका था। शासन का काम कर वसूलना और ज्यादा कर के लिए अपने साम्राज्य का विस्तार करना माना जाता था, जिसकी परिणति विश्वयुद्ध थी, पर सौ साल पहले शुरू हुए उस बदलाव की, अर्थात लोकतंत्र और कल्याणकारी अर्थव्यवस्था/समाजवादी अर्थव्यवस्था के तेज विकास (आज डेढ़ सौ से ज्यादा देशों में लोकतंत्र है और जहां पूरा लोकतंत्र नहीं है, वहां भी कुछ काम लोकतांत्रिक ढंग से होते हैं और कुछ नहीं तो दिखावा ही किया जाता है) ने भी कई अच्छे नतीजे दिए हैं पर बीते चार दशक से बुलंद बाजारवाद ने काफी चीजों पर पानी फेरा है। फिर दुनिया के सारे संसाधनों, सारी पूंजी, सारे बाजार, सारी रचनात्मकता, सारे कानून, सारी पर्यावरण व्यवस्था तक को बाजार की मुट्ठी में लानेवाले विश्व व्यापार

संगठन के दिन भी पूरे हो गए हैं।

उसके बहुत से लक्षण पहले से दिख रहे थे। इधर चार महीने पहले ट्रंप ने तो विश्व व्यापार संगठन (डब्लूटीओ) की बैठक में ही इसके खात्मे की भविष्यवाणी कर दी थी। डब्लूटीओ ने बीमा और बैंकिग से शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सेवाओं को भी जोड़कर इन दोनों को बाजार के हवाले किया है। यह प्रवृत्ति पहले से थी, पर अब इसका जोर, इसकी अनिवार्यता सी बन गई है। कोई ढंग की पढ़ाई बिना लोन के सम्भव नहीं, कोई बड़ा इलाज बिना बीमा के नहीं। आज यूरोप और अमेरिका के वे देश ही कोरोना के सबसे ज्यादा शिकार हुए हैं जो स्वास्थ्य और शिक्षा के निजीकरण को लगभग पूरा कर चुके हैं। अमेरिका में तो इलाज सचमुच इतना महंगा है कि बिना बीमा के सर्दी बुखार का इलाज करा पाना भी सामान्य आदमी के वश का नहीं रहा। अपने यहां भी आईआईटी व आईआईएम में सामान्य घर का बच्चा चला जाता है तो बिना कर्ज पढ़ाई असंभव है।

इसी महामारी से यूरोप रसातल में जाता दिखता है और इसी से हमारे जैसे गरीब देशों के करोड़ों कमजोर लोग और बदहाल होंगे व इस महामारी की भेंट चढेंगे।

अब तो गांव-गांव में शिक्षा की दूकानें खुली हैं, बल्कि सरकारी स्कूल खाली हुए हैं। ज्यादातर मिड डे मिल की जगह बन गए हैं। पढाई के लिए लोग बच्चों को कथित इंग्लिश मीडियम स्कूल भेजते हैं। अपने यहां भी बीमा और निजी अस्पतालों का जोर बढ़ा है। यहां अच्छा इलाज कितना होता है पता नहीं, पर महंगा इलाज जरूर होता है। लूट और ग्राहक को फांसना जरूर होता है, मुर्दों से भी वसूली होती है। आपात चिकित्सा भी मोटी रकम जमा कराए बगैर शुरू नहीं होती, पर इस वैश्विक महामारी ने कई मामलों में 'बराबरी' ला दी है। इसने अमीर-गरीब, गोरे - काले, हिन्दू-मुसलमान (हालांकि अपने यहां की राजनीति ने यह खेल चलाया है) और देश इलाके की सीमाओं को बेमानी बनाया है। कितना भी घर की देहरी, गांव की सीमा, शहर और प्रांत की सीमा पर बाड़ ख़ड़े करने की, यातायात के साधनों पर रोक से वैश्विक आवाजाही पर रोक की कोशिश हुई पर बीमारी के पांव में बेड़ियां न पड़ सकीं। और तो और ब्रिटेन के प्रधान मंत्री बोरिस जानसन जैसा 'बड़ा' आदमी भी इस महामारी की चपेट में आया।

बोरिस एक अन्य वजह से भी महत्वपूर्ण हैं। वे उस कंजरवेटिव पार्टी के नेता हैं जिसकी नेता मार्गरेट थैचर ने चार दशक पहले इंग्लैंड की सोशल वेलफेयर योजनाओं को पलीता लगाना शुरू किया था (अमेरिका में यह काम उनके समकालीन रिपब्लिकन राष्ट्रपति रोनाल्द रीगन मे किया था)। खुद बोरिस भी ब्रिटेन में लगभग सौ साल से चल रही और बहुत व्यापक स्तर पर लाभ देने वाली नेशनल हेल्थ स्कीम के विरोधी रहे हैं। थैचर युग से लगातार इस योजना का महत्व घटा है और इसका बजट कम हुआ है। अभी बीमार होने के पहले तक वे इस योजना का बजट घटाना चाहते थे जबकि 2015 के एक जनमत संग्रह के अनुसार 89 फीसदी लोग इसके पक्ष में थे, पर इस महामारी को संभालते-संभालते और खुद बीमार पड़कर जानसन बदल गए हैं। पहले निजी अस्पतालों को किराए पर लेने का अनुभव और फिर अपना अनुभव यही कहलवाने तक आया कि नेशनल हेल्थ स्कीम को मजबूत करना होगा।

अमेरिका का अनुभव इससे अलग नहीं था। जिस न्यूयार्क में सबसे ज्यादा मौतें हुई हैं वह सबसे सम्पन्न और सबसे ज्यादा निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर आश्रित इलाका था और अब यह बात सामने आई है कि अमेरिका के बारे में प्रचारित बात जो भी हो पर मरने वालों में अश्वेत और हिस्पानिक लोग ज्यादा थे क्योंकि उनका बीमा कम था या जितने का बीमा था उतने में बड़ी बीमारियों का इलाज संभव न था। अगर श्वेत लोगों में 70 फीसदी के पास बीमा है (यह आंकड़ा भी बनी धारणा से कम है), तो पचास फीसदी अश्वेत लोगों के पास ही बीमा था। अमेरिका में 2013 में अगर 41 फीसदी लोगों का स्वास्थ्य बीमा था तो मात्र छह साल में यह बढ़कर 52 फीसदी हो गया था, पर एक तिहाई आबादी तो इसके दायरे से बाहर ही है। मरने वालों में अगर गोरों का हिस्सा 26 फीसदी था तो अश्वेतों का 70 फीसदी।

फिर सिर्फ बीमारी का मामला भी नहीं रहता। निरोग रखना ज्यादा लाभकर लगता है जो असल में स्वास्थ्य के प्रति भारत ही नहीं पुराने समाजों का नजरिया रहा है। इसका नया

स्वरूप बीमारी की रोकथाम के सामान्य किस्म के काम भी हैं जिसमें सफाई और टीका करण तथा डीडीटी जैसी चीजों का छिड़काव भी शामिल है। देश और दुनिया के बड़े से बड़े निजी अस्पताल को आप दो पैसे का डीडीटी बाहर छिड़कते नहीं देखेंगे, अपना कचरा ठीक से फेंकते नहीं देखेंगे। इस मामले में सारी बदहाली के बावजूद सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग सारी कटौती और लूट के बावजूद शहरों को साफ रखने का काम करते हैं और गाहे बेगाहे ग्रामीण इलाकों पर भी ध्यान देते हैं और यह सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति चौकसी का ही नतीजा है कि हमारे यहां सबसे पहले और सबसे ज्यादा संक्रमण झेलने वाले केरल ने (जहां सबसे ज्यादा लोगों की विदेश से आवाजाही है) सबसे प्रभावी ढंग से कोरोना पर काबू पाया और जिस मुम्बई, दिल्ली, नोएडा, अहमदाबाद और सूरत को बाजार के हवाले किया गया था वे कोरोना का गढ़ बन गए हैं।

हमारी मुश्किल यह भी है कि हम स्वास्थ्य पर ज्यादा खर्च करने की स्थिति में नहीं हैं। हमारा स्वास्थ्य का कुल खर्च जीडीपी का मात्र एक फीसदी है। अरविन्द केजरीवाल के आने के बाद दिल्ली ने शिक्षा का बजट बढ़ाया और सरकारी स्कूलों पर ध्यान दिया। उनकी नीतियों में अभी भी कमियां हैं और निजी तथा सरकारी व्यवस्था के समांतर चलने से मुश्किलें हैं। इसके बावजूद दिल्ली के सरकारी स्कूलों का रिकार्ड बहुत सुधरा है। अब यह चीज वे उच्चतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं पर क्यों नहीं लागू कर रहे हैं इसका जबाब वे देंगे पर निजीकरण थामकर सार्वजनिक क्षेत्र को बढ़ाने का मसला सबके लिए है। उदाहरण सिर्फ केरल का नहीं है। जिस चीन से यह महामारी शुरू हुई और फैली उसने शुरुआती झटके को संभालते हुए जिस तेजी से इस महामारी पर काबू पाया और आज इसे एक वैश्विक आर्थिक अवसर मानकर पूरे जुनून के साथ दुनिया में सामान निर्यात करने लगा है उससे सब हैरान हैं तो अमेरिका और यूरोप डरे हुए हैं।

यह सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति चौकसी का ही नतीजा है कि हमारे यहां सबसे पहले और सबसे ज्यादा संक्रमण झेलने वाले केरल ने सबसे प्रभावी ढंग से कोरोना पर काबू पाया

इटली में भी महामारी ने सबसे ज्यादा अमीर और निजी चिकित्सा वाले लोम्बार्डी प्रांत और उसके भी बेगामो को अपना निशाना बनाया जो आबादी में मात्र 16 फीसदी हिस्सेदारी रखता है लेकिन मौत के आंकड़ों में 66 फीसदी हिस्सेदार हो गया। स्पेन का यही हाल रहा जबकि सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर अपेक्षाकृत ज्यादा खर्च करने वाले जर्मनी ने महामारी को बेहतर ढंग से संभाला। असल में नजरिए का फर्क बहुत महत्वपूर्ण है। अगर आप बीमारी (या शिक्षा) को कमाई का साधन मानेंगे व लोगों को स्वस्थ रखना ज़िम्मेदारी न सही उनके बीमार होने को शासन की सिरदर्दी (और अगली बार चुनाव जीतने में बाधक) मानकर काम करेंगे तो उसमें काफी फर्क तो

आएगा ही।

इस पक्ष को भुला भी दें तो यह असलियत है कि आज कोरोना की दवा (प्रायोगिक ही सही) और उपकरण बनाने का लगभग सारा काम् चीनी कम्पनियों पर निर्भर है। हमारे यहां का दवा उद्योग भी चीनी रसायनों के आयात के सहारे ही चलता है। उसने जिस रफ्तार से स्टेडियमों को अस्पतालों में बदला, सैनेटाइजेशन का अभियान चलाया, स्वास्थ्य सुविधाएं जुटाईं वह हैरान करने वाली तो हैं ही, वह किसी भी निजी स्वास्थ्य व्यवस्था से संभव भी नहीं है। यह काम कोरिया में हुआ है, स्वीडेन में भी हुआ है। दूसरी ओर पूरी तरह अमेरिकी नकल और बाजार के भरोसे रहने वाला सिंगापुर तबाह हो गया है। ईरान ने भी शुरुआती झटके बाद स्थिति संभाल ली। अकेले चीन अपनी स्वास्थ्य सेवाओं और केन्द्रीकृत फैसला प्रणाली से इस महामारी से नहीं लड़ रहा है। हमारे यहां समेत पूरी दुनिया में शासन का केन्द्रीकरण हुआ है। बल्कि हंगरी और पोलैंड में तो महामारी के बहाने वहां के मौजूदा शासकों ने आजीवन शासन करने का फैसला भी करा लिया है। अपने यहां भी संघ परिवार तो विक्रमादित्य के बाद कायम हिन्दू (मोदी) राज को कायम रखने का अभियान चला रहा है (जिसमें ग़रीबों को राशन बांटकर मूंडना शामिल है)। एक रिटायर्ड चीफ जस्टिस ने भी चुनाव बन्द करने और मोदी को शासक बनाए रखने की मांग कर ही दी है।

जिस मोदी शासन ने बेहिसाब निजीकरण का अभियान चलाया, सार्वजनिक क्षेत्र की बिक्री का अभियान चलाया वहीं अब निजी अस्पतालों, होटलों और अन्य निजी संस्थाओं को अपने अधीन करके बीमारी के खिलाफ लडाई में मदद ले जा रही है।

जिस चीज से लाभ घाटे का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है उसकी चर्चा भी जरूरी है। जिस मोदी शासन ने बेहिसाब निजीकरण का अभियान चलाया, सार्वजनिक क्षेत्र की बिक्री का अभियान चलाया (इस साल भी बजट में 93 हजार करोड़ रुपए विनिवेश से आने का अनुमान बताया गया है)। वहीं अब निजी अस्पतालों, होटलों और अन्य निजी संस्थाओं (जिनमें शिक्षण संस्थाओं के भवन शामिल हैं) को अपने अधीन करके बीमारी के खिलाफ लडाई में मदद ले जा रही है। जिस भेल और रेलवे इंजीनियरिंग कारखाने से हजार इंजन बनाने का काम छीनकर उसने एलस्टार्म और जीई कम्पनी को दस गुनी कीमत पर सौंपा थी उसी रेल इंजीनियरों और भेल की मदद इसके लिए ली जा रही है। रेल इंजीनियर पुराने कोचों को कोरांटाइन डिब्बा बना रहे हैं,, मास्क बना रहे हैं तो भेल को 30000 वेंटीलेटर बनाने का आर्डर दिया गया है।

हमारी तरह दुनिया भी एक बार फिर से सार्वजनिक क्षेत्र की तरफ पलटती दिख रही है। अमेरिका भी इस आपातकाल में कुछ निजी अस्पतालों को भाड़े पर लेकर उनमें कोरोना मरीज़ों का इलाज करा रहा है, पर उनका किराया देने में ट्रंप भी हाय-हाय कर रहे हैँ। उन्होंने जनरल मोटर्स से वेंटीलेटर बनाने को कहा है। इसी तरह इटली की सरकार ने भी सियरे इंजीनियरिंग से वेंटीलेटर बनाने को कहा है। मामला चीजों के उत्तरदायी सरकार के हाथ में रहने, काम करने वालों और साधनों पर नियंत्रण का तो है ही, कई और आर्थिक ज़रूरतों का क्रम भी बदलता दिख रहा है। आज अनाज, दूध, फल और दवा को सामान्य आर्थिक हिसाब से थोड़ा अलग गिनने का मानस बन रहा है। खेती-किसानी का महत्व नए सिरे से समझ आ रहा है। जाहिर है संसाधनों पर सरकारी /सार्वजनिक नियंत्रण के साथ विकेन्द्रित उत्पादन और लाभकारी खेती के लिए दबाव बढ़ेगा, तो एक तरफ सूचना तकनीक से हर तरह निगरानी और सारे उत्पादन को बाजार के हवाले करने का दबाव होगा। सत्ता के केन्द्रीकरण का जोर होगा तो दूसरी ओर सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादन, सेवाएं देने का, खेती का, विकेन्द्रीकरण का भी दबाव होगा। जाहिर है राजनैतिक लड़ाई से ही इसका फैसला होगा। इसलिए जो लोग सार्वजनिक क्षेत्र और विकेन्द्रीकरण के पक्षधर हैं उनको भी कमर कसकर तैयार रहना होगा।

(यह लेखक के अपने विचार हैं)

कोरोना से युद्धः विधानसभा का विशेष सत्र बुलाने से भाग रही भाजपा

बुलेटिन ब्यूरो

कोरोना से उत्पन्न हालातों के मद्देनजर विपक्षी दलों से भी सलाह-परामर्श करना उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार को गवारा नहीं। वह मानकर चल रही है कि जो वह कर रही है सब सही है। उसे किसी की रचनात्मक-सकारात्मक सलाह की कोई जरूरत नहीं। उसकी सोच ऐसी न होती तो वह कोरोना संकट को ध्यान में रखते हुए विधानसभा का विशेष सत्र बुलाने की समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव की मांग पर गौर जरूर करती।

सरकार के इस रवैये पर श्री अखिलेश यादव ने कहा है कि **लोकतंत्र में जनता की आवाज उठाना भाजपा सरकार को गवारा नहीं। उसको इसमें अपना सिंहासन डोलने का खतरा लगने लगता है। लोकतांत्रिक मर्यादाओं और मान्यताओं की तिलांजलि दी जा रही है।** विपक्ष से तो क्या मुख्यमंत्री जी को अपने विधायक से भी डर लगने लगा है? आखिर विधानसभा का विशेष सत्र बुलाने से परहेज क्यों?

श्री यादव ने कहा है कि सदन का विशेष सत्र हो तो इसमें विधायक कोरोना संकट के समाधान के बारे में चर्चा करते, उपाय बताते जिससे सरकार को मदद मिलती। चंद अधिकारियों के बूते इस भयंकर समस्या का सामना नहीं किया जा सकता है। मुख्यमंत्री जी दावे चाहे जितने करें कोरोना संक्रमरण के हालात सुधर नहीं रहें है।
उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश में कोरोना संक्रमित लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। कई वैसे जनपदों में भी मामले सामने अ◌ा ररहे हैं जो अब तक संक्रमण से अछूते थे। आगरा-कानपुर-लखनऊ जैसे हॉटस्पाट जिलों के बाद मेरठ में भी बड़ी संख्या में लोगों का कोरोना संक्रमित होना भयावह स्थिति की ओर इशारा करता है।

इतना ही नहीं ला◌ॅकडाउन में भोजन के लिए बेबस महिलाएं, बच्चे और बुजुर्ग क्वारंटाइन सेंटर से बाहर आते हैं तो उन पर पुलिस लाठीचार्ज करती है, यह प्रशासनिक संवेदनशून्यता की हद है। अब झूठ छुपाने को सरकार द्वारा तरह-तरह के बहाने बनाए जा रहे हैं। भाजपा राज में उत्तर प्रदेश बर्बाद हो चला है। इस कोरोना काल में भाजपा सरकार स्वयं जनता के लिए परेशानी का कारण बन गई है।

किसान त्रस्त सरकार शराब की बिक्री बढ़ाने में मस्त

बुलेटिन ब्यूरो

वैश्विक महामारी कोरोना से उत्पन्न परिस्थितियों के बीच मौसम की मार ने उत्तर प्रदेश को अलग से परेशान कर रखा है। अतिवृष्टि एवं ओलावृष्टि की एक घटना की फसलों पर चोट ठंडी नहीं पड़ती है कि फिर से अतिवृष्टि एवं ओलावृष्टि किसानों की मेहनत पर पानी फेर दे रही। कोरोना संक्रमण के दौर में प्रदेश के किसानों पर बे-मौसम बरसात, आंधी और ओलावृष्टि की भी प्राकृतिक मार आ पड़ी है।

जो किसान प्रदेश की अर्थव्यवस्था और विकास में सबसे ज्यादा योगदान देता है, उसकी उपेक्षा की जा रही है। उसका जीवन घोर संकट में पड़ गया है। आजीविका के सभी रास्ते बंद होते दिख रहे हैं। इन हालातों में उत्तर प्रदेश सरकार से मुकम्मल मदद की उम्मीद लगाए किसानों को निराशा ही हाथ लगी है। किसानों के लिए तो भाजपा सरकार ने कुछ ठोस नहीं किया अलबत्ता लॉकडाउन में सरकारी कमाई बढ़ाने के लिए वह शराब की बिक्री में नए गुणा-भाग का काम पूरा मनोयोग से जरूर कर रही है।

बे-मौसम बारिश एवं ओलावृष्टि ने किसानों की कमर ही तोड़ दी है। कई जनपदों में अतिवृष्टि ने गेहूं की फसल चौपट कर दी तथा आम के वृक्षों के बौर भी झड़ गये। आकाशीय बिजली गिरने से लगभग एक दर्जन से ज्यादा किसानों की मौत भी हुई है। समाजवादी पार्टी ने मृतक किसानों के आश्रितों को 25-25 लाख रूपये प्रत्येक की आर्थिक सहायता देने की मांग राज्य सरकार से की है, लेकिन भाजपा सरकार ने किसान की चिंता छोड़कर कारपोरेट घरानों को मदद देने का एलान कर दिया है। सरकार उद्योगपतियों को राहत देने में लगी है। जबकि किसानों को पैकेज के नाम पर झुनझुने थमाने की कोशिश की गई है। गन्ना किसान का बकाया भुगतान भी नहीं हुआ, उल्टे कई जगहों पर तो उसे कर्ज वसूली की नोटिसें दी जा रही है।

समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं पूर्व मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव ने अपने बयान में कहा है कि भाजपा सरकार की किसान विरोधी नीति के कारण अन्नदाता बदहाल है। भाजपा शुरू से ही कभी भी

किसानों की हितैषी नहीं रही। उत्तर प्रदेश में जब से भाजपा सत्तारूढ़ हुई है तब से विगत तीन वर्षों में सैकड़ों किसान कर्ज के कारण आत्महत्या कर चुके है। इधर लॉकडाउन में भी किसानों की आत्महत्यायें रूक नहीं रही है। दो माह पहले हुए नुकसान का भी पर्याप्त मुआवजा किसानों को नहीं दिया गया है। इधर जो फसलों का नुकसान हुआ है और इसके पहले जो नुकसान हुआ उसकी भरपाई करने हेतु राज्य सरकार को फसलों के नुकसान का पर्याप्त मुआवजा देने की व्यवस्था करनी चाहिए।

उल्लेखनीय है कि अधिकांश किसान पशुपालन भी करते हैं। लॉकडाउन के कारण पूरे प्रदेश में दूध की मांग में 50 प्रतिशत तक की गिरावट आ गई है। इससे दूध के कारोबारियों, पशुपालकों और किसानों को भी भारी नुकसान हो रहा है। उनके लिए भी राहत पैकेज घोषित होना चाहिए। किसानों को फसल बीमा, सम्मानराशि आदि तमाम घोषणाओं का कोई लाभ नहीं मिल रहा है। किसानों ने आय दुगुनी होने की उम्मीद तो भाजपा सरकार में छोड़ ही दी है। उसकी बची-खुची पूंजी भी लुट जाने से वह अब अन्नदाता के बजाय स्वयं अन्न के लिए तरसने वाला बन जाएगा। किसान को समर्थन मूल्य मिलने और लागत का ड्योढ़ा मूल्य मिलने की ऐसे में कैसे आशा की जा सकती है। भाजपा की ये घोषणाएं हवा-हवाई साबित हो रही हैं।

किसानों के लिए तो भाजपा सरकार ने कुछ ठोस नहीं किया अलबत्ता लॉकडाउन में सरकारी कमाई बढ़ाने के लिए वह शराब की बिक्री में नए गुणा-भाग का काम पूरा मनोयोग से जरूर कर रही है।

सच्चाई यह है कि किसानों को तो भाजपा सरकार में सिवाय उपेक्षा और अपमान के और कुछ मिलने वाला नहीं है। गेहूं के क्रय केन्द्र कागजों में खुले हैं। किसान को न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं मिला और न ही मिलने की उम्मीद है। अब मजबूरी में औने पौने दाम पर फसल बेचने को वह मजबूर है लेकिन भाजपा सरकार को किसानों के हितों की परवाह नहीं है। हर बार जब किसान पर आफत आती है तब उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री एक सांस में फसलों को हुए नुकसान का ब्यौरा तलब करते है और दूसरी सांस में तत्काल किसानों को मदद देने के निर्देश देते हैं, लेकिन न तो नुकसान का कोई ब्यौरा होता है, न मदद की मंशा।

दरअसल किसान के साथ छलावे की यह घटिया राजनीति भाजपा के चरित्र का ही हिस्सा है। भाजपा सरकार की यह संवेदनाशून्यता है कि किसानों को अभी तक कोई मुकम्मल राहत नहीं मिली। भाजपा राज में किसानों की फसल का ड्योढ़ा दाम देने, सस्ता कर्ज दिलाने, एमएसपी पर गेंहू खरीदने, किसान की आय दुगनी करने और गन्ना भुगतान में विलम्ब पर ब्याज भी देने जैसी तमाम घोषणाओं और वादों की तुकबंदी ही अब तक देखने को मिली है। किसान ठगा ही रह गया है। सरकार को कुछ करना है तो गांव-गांव में किसानों को आर्थिक मदद देने के साथ उनको खाद, बीज, कीटनाशक, बिजली-पानी में भी राहत देनी चाहिए।

सहयोग - सेवा समाजवाद

कोरोना से उत्पन्न अभूतपूर्व हालातों ने मानवता को बड़े संकट के सामने ला खड़ा किया है। प्रवासी मजदूर पैदल ही अपने घरों की ओर चल रहे हैं। उनके सामने भोजन-पानी का संकट है। शहरों-कस्बों में रहनेवाली बड़ी आबादी के सामने भी ऐसी समस्या है। इन परिस्थितियों में समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री अखिलेश यादव ने नारा दिया है- नर सेवा ही नारायण सेवा। सपा का हर सिपाही अपने नेता के नारे को साकार करते हुए तन-मन-धन से सेवा कार्य में जुटा है। बीते तीन महीने से भी ज्यादा समय से समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ता व पदाधिकारी अनवरत जरुरतमंदों के खाने-पीने का इंतजाम कर रहे हैं, और यह सिलसिला जारी रहेगा।

कार्यालय लोक निर्माण विभाग, कानपुर

REDMI K20 PRO

समाजवादी

अभिव्यक्ति की आजादी को प्रतिबंधित करता है यूएपीए

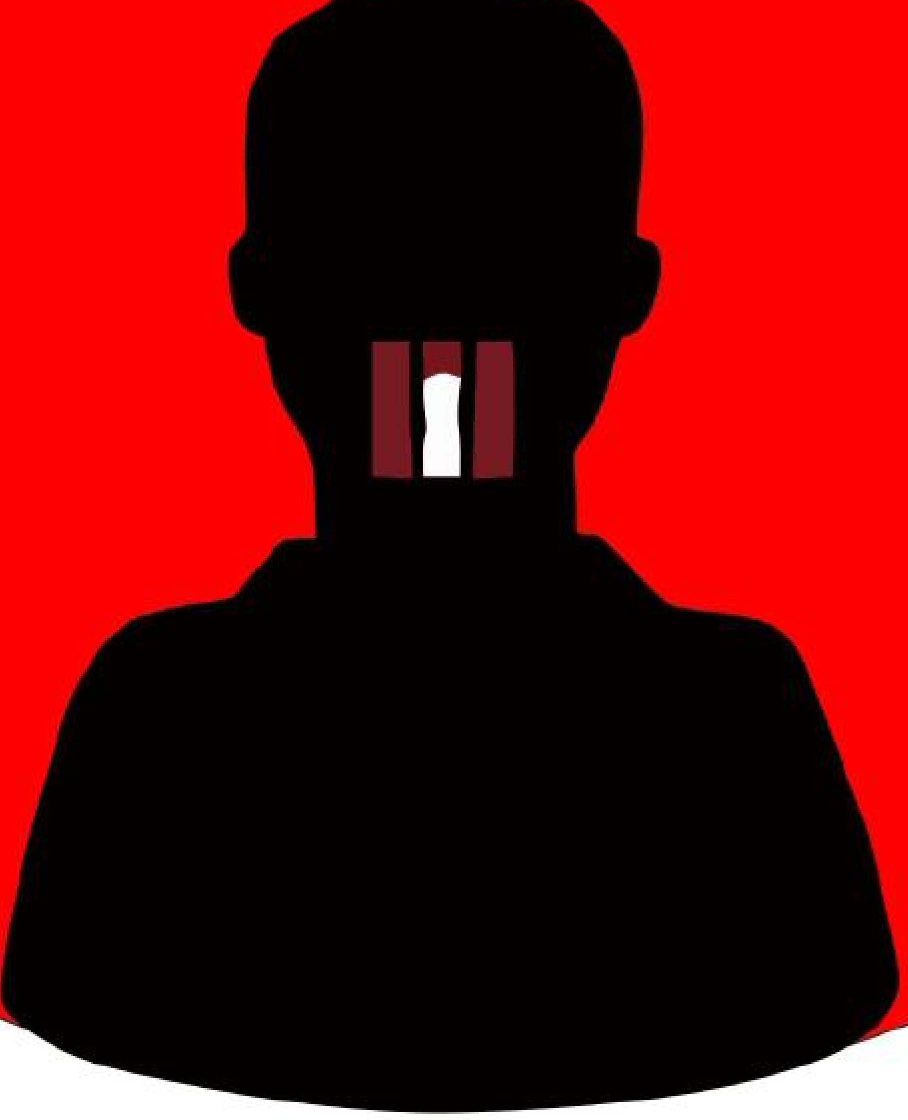

गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) संशोधन बिल, 2019 को 24 जुलाई, 2019 को पारित किया गया और राज्यसभा ने इसे 2 अगस्त 2019 को पारित किया गया। 2 अगस्त 2019 को यह गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) संशोधन अधिनियम (यूएपीए) , 2019 बन गया है। गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 2019 में बदलाव के बाद, एक 'व्यक्ति' को संदिग्ध आतंकवादी भी कहा जा सकता है। यह अधिनियम सरकार को यह अधिकार देता है कि इसके आधार पर वह किसी को भी व्यक्तिगत तौर पर आतंकवादीघोषित कर सकती है। यहz कानून पूरे देश में लागू है। इसके तहत

क़ानूनी पहलू

देवेन्द्र उपाध्याय

एडवोकेट

आरोपित कोई भी भारतीय या विदेशी नागरिक इस अधिनियम के तहत सजा के लिए उत्तरदायी है, भले ही अपराध किसी भी जगह पर किया गया हो। इस अधिनियम के प्रावधान भारतीय और विदेशी नागरिकों पर लागू होते हैं।

यदि कोई पानी का जहाज और एयरक्राफ्ट भारत में पंजीकृत है, तो उस पर सवार व्यक्ति किसी भी देश में हो, उन पर यह कानून लागू होता है। यह अधिनियम राष्ट्रीय जांच एजेंसी को भी असीमित अधिकार देता है। अब तक के नियम के मुताबिक एक जांच अधिकारी के आतंकवाद से जुड़े किसी भी मामले में संपत्ति सीज करने के लिए पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) से अनुमति लेनी होती थी, लेकिन अब यह अधिनियम इस

बात की अनुमति देता है कि अगर आतंकवाद से जुड़े किसी मामले की जांच एनआईए का कोई अफसर करता है तो उसे इसके लिए सिर्फ एनआईए के महानिदेशक से अनुमति लेनी होगी। नए संशोधनों के बाद अब एनआईए के महानिदेशक को ऐसी संपत्तियों को कब्जे में लेने और उनकी कुर्की करने का अधिकार मिल गया है जिनका आतंकी गतिविधियों में इस्तेमाल किया गया। अब इसके लिए एनआईए को राज्य के पुलिस महानिदेशक से अनुमति लेने की जरूरत नहीं होगी जांच के संबंध में भी एनआईए के पास अब ताकत और बढ़ गई है। अब तक के नियम के अनुसार, ऐसे किसी भी मामले की जांच डिप्टी सुपरिटेंडेंड ऑफ पुलिस (डीएसपी) या असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ पुलिस (एसीपी) रैंक के अधिकारी ही कर सकते थे, लेकिन अब नए नियम के मुताबिक एनआईए के अफसरों को ज्यादा अधिकार दिए गए हैं।

अब ऐसे किसी भी मामले की जांच इंस्पेक्टर रैंक या उससे ऊपर के अफसर कर सकते हैं। यूएपीए में नए बदलाव के तहत एनआईए के पास असीमित अधिकार आ गए हैं। वह आतंकी गतिविधियों में शक के आधार पर लोगों को उठा सकती है। साथ ही व्यक्ति को आतंकी संगठन घोषित कर उनपर कार्रवाई कर सकती है। साथ ही जांच के लिए एनआईए को पहले संबंधित राज्य की पुलिस से अनुमति लेनी पड़ती थी लेकिन अब इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी, ऐसे में एनआईए की मनमानी बढ़ जाएगी।

ऐसे में यह अधिनियम संवैधानिक अधिकार के हनन का अधिकार देता है, किसी को शक या सरकार के कहने पर आतंकी घोषित किया जा सकता है। यह संशोधन सरकार को किसी भी व्यक्ति को न्यायिक प्रक्रिया का पालन किये बिना आतंकी घोषित करने का अधिकार देता है जिससे भविष्य में राजनैतिक द्वेष अथवा किसी अन्य दुर्भावना के आधार पर दुरुपयोग की आशंका बनी रहेगी। इस संशोधन में आतंकवाद की निश्चित परिभाषा नहीं है। इसका नकारात्मक प्रभाव यह हो सकता है कि सरकार व

यूएपीए में नए बदलाव के तहत एनआईए के पास असीमित अधिकार आ गए हैं। वह आतंकी गतिविधियों में शक के आधार पर लोगों को उठा सकती है। साथ ही व्यक्ति को आतंकी संगठन घोषित कर उनपर कार्रवाई कर सकती है।

कार्यान्वयन एजेंसी आतंकवाद की मनमानी व्याख्या द्वारा किसी को भी प्रताड़ित कर सकते हैं। यह संशोधन किसी भी व्यक्ति को आतंकी घोषित करने की शक्ति देता है जो किसी आतंकी घटना की निष्पक्ष जाँच को प्रभावित कर सकता है। पुलिस राज्य का विषय है परंतु यह संशोधन एनआईए को संपत्ति को जब्त करने का अधिकार देता है जो कि राज्य पुलिस के अधिकार क्षेत्र में कमी करता है। यह कानून भारत की संप्रभुता और एकता को खतरे में डालने वाली गतिविधियों को रोकने के उद्देश्य से बनाया गया था। यह कानून संविधान के अनुच्छेद-19 द्वारा प्रदत वाक् व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, बिना शस्त्रों के एकत्र होने के अधिकार और संघ बनाने के अधिकार पर प्रतिबन्ध आरोपित करता है। ये भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक और हथियारों के बिना एकत्र होने का अधिकार, एसोसिएशन या यूनियन बनाने के अधिकार पर प्रतिबंध लगाता है। गैरकानूनी गतिविधियों (रोकथाम) अधिनियम की अनुसूची 4 में संशोधन, एनआईए एक यह अधिकार देता है कि वह एक व्यक्ति को केवल आतंकी या आतंकियों से सम्बन्ध रखने की आशंका में गिरफ्तार कर ले। सरकार इस कानून का दुरुपयोग कर सकती है जैसा कि आतंकवाद निरोधक अधिनियम के मामले में देखा गया था। इस बात की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सरकार इस कानून का प्रयोग अपने विरोधी लोगों और संस्थाओं की आवाज को दबाने के लिए कर सकती है।

चूंकि इसमें संसद को मौलिक अधिकारों पर उचित प्रतिबंध लगाने की शक्ति प्रदान की गयी है इसलिए यह मामला बहुत संजीदा हो जाता है लेकिन विचार करने के लिए आसान सा सवाल यह है कि वह कानून, जिसने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को छीन लिया है, इसका मकसद उन

गतिविधियों को रोकना था जो भारत की संप्रभुता और अखंडता के लिए खतरा हैं। स्वाभाविक रूप से, इसने इस बात की संभावना पैदा कर दिया है कि इस अधिनियम से देश की संप्रभुता और अखंडता की आड़ में लोगों की बोलने और अभिव्यक्ति की आजादी को प्रतिबंधित किया जा सकता है। अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत भारत का संविधान हर नागरिक को बोलने और अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार देता है। यह एक प्राकृतिक अधिकार है, जिसका अर्थ है कि हम अपने जन्म के बाद से इसके हकदार हैं, क्योंकि यह ऐसा अधिकार है जिसके बिना मनुष्य के अस्तित्व की पैमाइश नहीं की जा सकती है। यह प्राकृतिक अधिकार केवल आपातकाल के दौरान छीना जा सकता है, और वह भी सिर्फ निषेधात्मक रूप से।

इस कानून में खामियां परिभाषा की धारा के साथ ही है। आतंकवाद की कोई परिभाषा ही नहीं दी गई है।आतंकवादी गतिविधि को धारा 15 के तहत परिभाषा किया गया है और धारा 2 (के) के अनुसार आतंकवादी की परिभाषा इसी के अनुसार मानी जानी चाहिए। यह व्याख्या का व्यापक दायरा प्रदान करता है, जिसका उपयोग और दुरुपयोग उस समय की मौजूदा सरकार द्वारा किया जा सकता है। इसके अलावा, धारा 2 (ओ) (ii) के तहत "गैरकानूनी गतिविधियों" की परिभाषा में ऐसी कार्रवाई शामिल है जो भारत की सम्प्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता को अस्वीकार करती है, सवाल उठाती है या बाधित करती है।

ऐसे में कल को, उदाहरण के तौर पर अगर कोई शख्स डोकलाम गतिरोध को चीन की जीत बताता है, तो, इस तरह की संदिग्ध शब्दावली के तहत, उसे गैरकानूनी गतिविधि में संलिप्त कहा जा सकता है।

इस अधिनियम से देश की संप्रभुता और अखंडता की आड़ में लोगों की बोलने और अभिव्यक्ति की आजादी को प्रतिबंधित किया जा सकता है।

इसके अलावा, धारा 43 डी पर सरसरी नजर डालने से ही कानून की कई खामियां दिख जाती हैं। उपधारा 2(बी) के अनुसार, चार्जशीट दाखिल किए बिना हिरासत की अवधि को 180 दिन तक बढ़ाया जा सकता है, सरकार को यूएपीए की धारा 35 के तहत सरकारी गजट में अधिसूचना जारी कर किसी भी व्यक्ति को आतंकवादी घोषित करने का अधिकार है। यूएपीए में कहीं आतंकवादी की परिभाषा मौजूद ही नहीं है। आतंकवादी संगठन की सदस्यता इस अधिनियम के तहत अपराध है लेकिन सदस्यता को परिभाषित ही नहीं किया गया है। कोई व्यक्ति जो कृषि सुधार की मांग कर रहा है और एक संगठन का समर्थन करता है जिसे आतंकवादी समूह के रूप में अधिसूचित किया गया है तो उस शख्स को संगठन का सदस्य माना जा सकता है।

हालांकि 2011 में सुप्रीम कोर्ट ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा था कि "सदस्यता" उन मामलों तक ही सीमित है, जहाँ कोई शख्स हिंसा को उकसाने में सक्रिय रूप से शामिल था। गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) संशोधन अधिनियम, 2019 के बाद दो महिलाओं मशरत जाहरा, पेशे से पत्रकार एवं जामिया की छात्रा सफूरा जरगर के खिलाफ गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) संशोधन अधिनियम, 2019 के तहत कार्यवाही हुयी। पूर्व मे वर्ष 2018 मे सामाजिक कार्यकर्ता सुधीर धवाले, महेश राउत, वरवरा राव (कवि), सुरेंद्र गडलिंग (वकील) ,शोभा सेन (प्रोफेसर), सुधा भारद्वाज, रोना विल्सन, गौतम नवलखा (पत्रकार) व रोमिला थापर को गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1967 के अंतर्गत गिरफतार किया गया। रोमिला थापर बनाम यूनियन आफ इंडिया मे तीन जजो की बेंच माननीय पूर्व मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा, माननीय न्यायाधीश ए.एम.खनविलकर एवं माननीय न्यायाधीश डीवाई चन्द्रचूड़ में से माननीय न्यायाधीश चन्द्रचूड़ ने गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1967 के अन्तर्गत रोमिला थापर व कुछ अन्य सामाजिक कार्यकर्ता पर हुई कार्यवाही पर प्रश्न उठाए थे।

Akhilesh Yadav
@yadavakhilesh

Following

Socialist Leader of India. Chief Minister of UP (2012 - 2017)

Akhilesh Yadav @yadavakhilesh · May 14

सरकार से उम्मीद करते-करते जब हार गये तो 'आत्मनिर्भर' ...होकर... बेबस लोगों ने अपनी गाड़ी ख़ुद चला ली

#AatmNirbhar

Akhilesh Yadav
@yadavakhilesh

If the govt is willing to put aside political differences in these difficult times, Samajwadi Party workers can lend a helping hand using cycles to distribute food to the villages, especially to children who rely heavily on mid-day-meals for their daily nutrition. We are ready!

Akhilesh Yadav @yadavakhilesh · May 10

मज़दूर विरोधी भाजपा सरकार 'श्रमिक-क़ानून' को 3 साल के लिए स्थगित करते समय तर्क दे रही है कि इससे निवेश आकर्षित होगा; जबकि इससे श्रमिक-शोषण बढ़ेगा तथा साथ में श्रम असंतोष औद्योगिक वातावरण को अशांति की ओर ले जाएगा. सच तो ये है कि 'औद्योगिक-शांति' निवेश की सबसे आकर्षक शर्त होती है.

Akhilesh Yadav @yadavakhilesh · May 16

आज एक दुर्भाग्यपूर्ण आँकड़ा आया है कि भारत कोरोना के पीड़ितों के मामले में चीन से भी आगे निकल गया है. जिस प्रकार सड़कों पर अफ़रातफ़री मची है उससे साबित होता है कि 'समाज में दूरी' पैदा करनेवाली भाजपा 'सामाजिक दूरी' जैसे निवारक उपायों को भी लागू करवाने में पूर्णतः असफल रही है.

Akhilesh Yadav @yadavakhilesh · May 10

ये साइकिल ही मंज़िल तक पहुँचाएगी...

Akhilesh Yadav @yadavakhilesh · May 27

आशा है रेलवे स्टेशन पर एक बच्चे की अपनी मृत माँ को जगाने की विचलित करनेवाली तस्वीरें देखकर सरकार ये सुनिश्चित करेगी कि अब कोई और ट्रेन में भूख-प्यास से न मरे.

मुंबई-गुजरात में अभी भी घर लौटने के लिए व्यथित लोगों की सहायता के लिए सरकार राजनीति से ऊपर उठकर सच्ची मदद करे.

साफ़ और बेबाक

पंजीकृत डाक पंजीकरण संख्या *LW/NP-300/2018-2020*